✤ श्रीः ✤

श्रीमदमृतग्रन्थमालायाः (८)

अष्टमं पुष्पम् ।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-
महामहिम-आचार्य-
श्रीमदमृतवाग्भवप्रणीतम्

श्रीमन्दाक्रान्तास्तोत्रम्

श्रीभगवतीस्तवः

आचार्य रमानन्द सारस्वत शास्त्री रसेन्द्र-
निर्मितराष्ट्रभाषानुवादसहितः

अभिनव संस्करणम्
वि. सं. २०३७

मूल्यम् ५ रूप्यकाणि

प्रकाशक :

राजपण्डित श्रीगोविन्द मिश्रः
श्रीमदमृत-ग्रन्थमाला-कार्यालयः
चौबुर्जा, भरतपुर (राजस्थान)

अमृतनिभृतशास्त्रं साधुमुद्रापयित्वा
प्रथयति विबुधानां लब्धुकामः प्रसादम् ।
अमलमतिप्रसादीलालपुत्रोऽत्रिगोत्रो
भरतपुरनिवासो मिश्रगोविन्दशर्मा ॥

व्यवस्था-सहायकः श्रीगिरधरवल्लभ दाधीचः

पुस्तक प्राप्तिस्थानम् :

श्री आत्मप्रकाश शर्मा आचार्य
आचार्य आयुर्वेदाश्रम
मकराना मुहल्ला
जोधपुर (राजस्थान)

मुद्रक :

मोहन पारीक
मिलन मुद्रणालय
जोधपुर ।

श्रीः

निवेदनम्

मन्दाक्रान्तावृत्तमयं शिवं भगवतीस्तवम् ॥
देववाण्यां रचितवानाचार्योऽमृतवाग्भवः ॥१॥

सारस्वतो रमानन्दस्तमिमं राष्ट्रभाषया ॥
अनूद्य भूषयामास राष्ट्रभाषाविदां मुदे ॥२॥

बुद्धिप्रकाश इत्याऽऽख्यो वैद्योधन्यपदेस्थितः ॥
स्तवसम्मुद्रणार्थं यः श्रद्धयाद्रविणं ददौ ॥३॥

कृपाभाजनतां याताः सर्वेऽप्येते महत्पदे ॥
भगवत्याःस्थिता नित्यं लभन्तां यशउत्तमम् ॥४॥

श्रीभगवती भक्तान् प्रति
निवेदयते—
श्रीदुर्गादत्तशर्मा, सारस्वतो दयानन्दशर्मा च ।

प्रास्ताविक-वक्तव्य

अखण्डब्रह्माण्डमण्डलाधिष्ठात्री कुलकुण्डलिनीस्वरूपा मूलाविद्या-स्वरूपिणी महामहिमामयी जगदम्बा राजराजेश्वरी भगवती श्रीबाला-त्रिपुरसुन्दरी के भक्तिभावभरित दिव्यरहस्यगर्भित अनुपम स्तोत्ररत्न 'श्रीमन्दाक्रान्तास्तोत्र' का यह अभिनव संस्करण पाठकों के कर-कमलों की शोभा को बढ़ा रहा है।

इस पवित्र स्तोत्र का प्रथम संस्करण गतवर्ष वि. सं. २०३६ में स्तोत्रनिर्माता आचार्यचरण के शुभ जन्ममहोत्सव के अवसर पर डॉ. श्री बलजिन्नाथजी पण्डित शास्त्री महोदय प्रणीत राष्ट्रभाषानुवाद के साथ दिल्ली से प्रकाशित हुआ था।

इस वर्ष यह सौभाग्य जोधपुर को प्राप्त हुआ है, और इस संस्करण में आचार्यचरण द्वारा प्रदत्त अन्वर्थ आख्या 'रसेन्द्र' से समलंकृत आचार्य श्रीरमानन्दजी सारस्वत शास्त्री निर्मित राष्ट्रभाषानुवाद प्रकाशित है, जो कि द्वितीय होते हुए भी अद्वितीय है क्योंकि यह अनुवाद वि. सं. २०३३ में ही पूर्ण हो गया था, किन्तु अनुवादक महोदय की अस्वस्थता के कारण इससे पूर्व प्रकाशित नहीं हो सका।

इस अनुवाद को आचार्यचरण ने स्वयं देखा है, और पसन्द किया है, अतः इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं; विज्ञ एवं रसज्ञ पाठक इससे अपने आप ही आनन्द उठावेंगे।

पुस्तक में यत्र-तत्र मुद्रण दोष रह गये हैं, जिनके प्रति खेद है; उन्हें विज्ञजन स्वयं सुधार कर पढ़ने की कृपा करें।

जगदम्बा इसी प्रकार के सत्कार्यों में हमें प्रेरित करती रहे, इसी कामना के साथ—

श्रीअमृतजयन्त्युत्सवदिनम्
आषाढ़ शुक्ला दशमी, २०३७ वि.

विद्वद्वशम्वदः
वैद्यबुद्धिप्रकाश आचार्यः
मकराना मुहल्ला, जोधपुरम्।

स्तोत्र प्रणेता अनन्तश्रीविभूषित श्रीमदाचार्यचरण



पराम्बापदपाथोजमकरन्दमधुव्रताः ॥
ज्ञानवैराग्यभक्त्याद्यैस्सद्गुणैस्समलङ्कृताः ॥ ॥

स्वतन्त्रास्सर्वतन्त्रेषु करुणावरुणालयाः ॥
निरताः लोककल्याणे स्वात्मोल्लासविलासिनः ॥२॥

सन्मार्गस्योपदेष्टारस्सदाचारपरायणाः ॥
जयन्ति भगवत्पादा आचार्याऽमृतवाग्भवाः ॥३॥

— रसेन्द्रकवेः

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
2	12	मनुष्य कलेदर	मनुष्य कलेवर
3	8	महा शक्ति	महाशक्ति
3	14	भगवता	भगवती
3	24	तन्तु-तन्तु की	तन्तु-तन्तु को
4	19	प्रेकार	प्रकार
4	31	वीत मौढ़यान्धकारम्	वीतमौढ्यान्धकारम्
5	22	अनुरुप	अनुरूप
5	22	व्यञ्जित होता है	व्यञ्जित होता है ॥3॥
6	15	ध्वनित है	ध्वनित है ॥4॥
6	22	प्रकाशमान रात्रि (पूर्णिमा	प्रकाशमान रात्रि (पूर्णिमा)
7	7	बालामरुणाम्बुजस्थाम् ॥6॥	बालामरुणाम्बुजस्थाम् ॥
7	15	अनुकूल है	अनुकूल है ॥5॥
7	21	त्वत्सुतस्य ॥7॥	त्वत्सुतस्य ॥6॥
8	8	इङ्गित करता है।	इङ्गित करता है ॥6॥
8	21	अभ्यर्थना की है।	अभ्यर्थना की है ॥7॥
9	5	मिलते ही हैं।	मिलते ही हैं ॥8॥
9	23	उपलब्ध होता है।	उपलब्ध होता है ॥9॥
10	10	किया गया है।	किया गया है ॥10॥
10	30	प्राप्त कर लीजिये।	प्राप्त कर लीजिये ॥11॥
11	18	बढ़कर हो।	बढ़कर हो ॥12।
11	25	आनदाश्रु	आनन्दाश्रु
12	9	मूर्ति हैं।	मूर्ति हैं ॥13॥
13	16	ध्वंसक:।	ध्वंसक: ॥14॥
13	21	भक्तलोकाऽभिलषं	भक्तलोकाऽभिलाषं
13	24	आपक मन्त्र का	आपके मन्त्र का
14	3	पुष्टि की है।	पुष्टि की है ॥15॥
15	6	किया गया है।	किया गया है ॥16॥
15	10	कल्लोतुल्यं	कल्लोलतुल्यं
16	2	व्यञ्जित है।	व्यञ्जित है ॥17॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
17	1	नाडी से सचार	नाड़ी से संचार
20	13	जाग्रत्हप्रसित	जाग्रत्प्रहसित
20	14	विहृच्चूर्णं	विहसच्चूर्णं
25	8	काम की नष्ट	काम को नष्ट
28	28	सुमनरसुन्दरीणां	सुमनस्सुन्दरीणां
32	2	प्रास्यं राज्यं	प्राज्यं राज्यं
37	25	सहस्त्रार	सहस्रार
37	31	दन्ताश्चो ध्वं	दन्ताश्चोर्ध्वं
39	8	स्वष्ट	स्पष्ट
43	17	रह । है	रहा है
46	14	मूँच्छितानां	मूर्च्छितानां
46	16	दर विटपना	दरविटपिनां
48	10	अय	अन्य
49	14	तिलककुसुम	तिलककुसुमं
50	25	लताशोभया	तनुलताशोभया
51	11	बद्ध्वावरं	बद्ध्वा वैरं
52	26	बद्धदीक्ष	बद्धदीक्षं
54	7	जसे राजाओं को	जैसे राजाओं को
54	8	बल पर गर्वं	बल पर गर्व
54	23	दृष्ट्वाऽनुपसूषमं	दृष्ट्वाऽनुपमसुषमं
55	19	सम्प्रा प्रस्त्वां	सम्प्रामस्त्वां
56	5	पाप तोमो	पापस्तोमो
56	24	6।।4।।	।।64।।
58	17	सोधाम्मोधे	सोधाम्भोधे
63	9	मन्दाक्रान्तास्तावशिशुरहं	मन्दाक्रान्तस्तवशिशुरहं
64	7	कलाऽङ्कृतः	कलाऽलङ्कृतः
65	15	व्योम भूवर्षे	व्योमनेत्राब्दे
निवेदनम् श्लो. सं. 2		अनूद्य भूषायामास	अनूद्य भूषयामास
प्रस्ताविक वक्तव्य पं.1		मूलाविद्यास्वरूपिणी	मूलविद्यास्वरूपिणी
टाइटिल पेज 3		महानुभवशक्तिस्तव	महानुभवशक्तिस्तव
बालाचित्र में श्लो. पं.4		पुररिपोरीप्सितार्थंप्रदात्री	पुररिपोरीप्सितार्थंप्रदात्री ।

राजराजेश्वरी भगवती श्रीबालात्रिपुरसुन्दरी



नित्याऽनित्यस्वरूपैरभिनवमहितैस्स्वात्मनि द्योतमाना
विद्याऽक्षस्वच्छमालाऽभयवरदकरा रक्तपद्मासनस्था ।
ऐन्द्रीं शौक्लीं च सौरीं छविमलिकतटे बिम्बमिन्दोर्दधाना
बालाम्बा स्पन्दशक्तिर्जयतिपुररिपोरीप्सितार्थप्रदात्री ॥

—रसेन्द्रकवेः ।

॥ श्रीः ॥

श्री मन्दाक्रान्ता स्तोत्रम्

[श्री भगवती स्तवः]

दोर्भिश्चतुर्भिर्विद्याऽक्षमालाऽभयवरैर्युताम् ॥
रक्ताम्बुजसमासीनां बालाम्बामाश्रयेऽनिशम् ॥१॥

इस चराचर संसार के समस्त व्यापार का नियमन किसी अव्यक्त शक्ति के द्वारा निरन्तर हो रहा है, इस बात को प्रायः सभी स्वीकार करते हैं, अन्तर इतना ही है कि कुछ लोग शक्ति को जड़[1] मानते हैं और कुछ चैतन्य। ऐसे लोग पुरुष या ब्रह्म को निष्कल मानते हैं, किन्तु जब एकाकी निष्कल ब्रह्म भी सृष्टि व्यापार में असमर्थ होने के कारण शक्ति का आश्रय ग्रहण करता है, तब वह निष्कल ब्रह्म भी शक्ति से भिन्न सिद्ध नहीं होता। ऐसी स्थिति में संसार व्यापार में कारणभूता महाशक्ति का महत्त्व स्वतः प्रमाणित हो जाता है और शक्ति को जड़ मानने वालों का तर्क निरस्त हो जाता है।

तत्त्वतः पराशक्ति ही सबका अधिष्ठान और सर्वव्यापिका हैं, अतः शिव शक्ति या पुरुष प्रकृति में भेद मानना सर्वथा असङ्गत है। मूलरूपा वह पराशक्ति ही अपने वामा ज्येष्ठा और रौद्री स्वरूपों से तथा इच्छा ज्ञान और क्रिया के बल से निग्रहानुग्रहादि पञ्चकृत्यों को करती है। कहीं उसमें शिव का आभास होता है, कहीं शिवशक्तिमयता का; किन्तु वह सब आभासों में विद्यमान रहती हुई भी उनसे परे है, यही उसकी विलक्षणता है। इसी विलक्षणता को आगमों में स्वातन्त्र्य कहा गया है।

सांसारिक दृष्टि से शक्ति का प्रत्यक्ष मनोरम रूप जननी ही है, और जननी निसर्ग-करुणामयी होने के साथ ही सर्वदा अपनी संतान की हित-कामना करने वाली रहती है, अतः अधिकतर भावुक भक्तों ने महाशक्ति का जननी-भाव से ही सादर स्तवन किया है।

---

1 तन्त्र और सन्त : डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, पृ. 18, 19

श्री विद्या की मूल अधिष्ठात्री श्रीबाला-त्रिपुरसुन्दरी हैं। सभी वाम दक्षिण अर्चन क्रमों में इन्हीं विद्याराज्ञी की प्रायः सर्वप्रथम उपासना की जाती है।

श्रीमन्दाक्रान्तास्तोत्र के प्रारम्भ में जन्म-जन्मान्तरों के आवागमन से व्याकुल मानव को भोग और मोक्ष दोनों की ही प्राप्ति हो इस आशय की प्रार्थना मङ्गलाचरण रूप से इस प्रकार की गई है—

भ्रामं भ्रामं विविधजननीगर्भगेहान्तरेषु
श्रान्तश्श्रान्तस्तवपदयुगं प्राप्य विश्रान्तिहेतोः ॥
शान्तस्स्वान्तश्चरणपतितः प्रार्थये त्वां नितान्तं
मातर्माऽतः ! परमनुभवं जन्मनो देहि मह्यम् ॥१॥

हे माता ! तरह तरह की योनियों में उन विविध प्रकार की माताओं के गर्भ रूपी घरों में घूम-घूम कर अर्थात् चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर (अब इस मनुष्य कलेदर में आकर) बहुत थका हुआ मैं, परम विश्रान्ति के लिये अथवा परम विश्रान्ति के मूल कारण भूत आपके चरण-कमलों में पड़कर अर्थात् उनका आश्रय ग्रहण कर, अत्यन्त कातर वाणी से मैं यह प्रार्थना करता हूं कि अब मुझे जन्मान्तर ग्रहण करने का अर्थात् दुबारा जन्म लेने का अनुभव प्राप्त न हो।

भाव यह है कि विविध योनियों में 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' ग्रहण करता हुवा जीव जब कर्मफलों से अर्जित प्रारब्ध भोग से अत्यन्त दुःखी हो जाता है एवं अन्य भोग योनियों से विशिष्ट विवेक बुद्धि युक्त मनुष्य देह की इस कर्मयोनि को प्राप्त करता है, तब ज्ञान पूर्वक इस संसार-चक्र से छूटने का प्रयत्न करता है एवं अपने कृत कर्मों से अभीष्ट फल प्राप्त न होता देख कर परमेश्वर की भक्ति की ओर उन्मुख होता है। देव्यथर्वणोपनिषत् में कहा है—

'नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्'

अनन्य शरण भाव से भक्ति पूर्वक जगदम्बा के चरण कमलों की उपासना भुक्ति और मुक्ति प्रद है, यह आगम सम्मत है। विश्रान्ति हेतु शब्द से जहां मुक्ति प्रद भाव ध्वनित है, वहां 'परमनुभव' से भुक्तिप्रदता का आशय स्पष्ट होता है। श्री भगवद्गीता में 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' कह कर जहां भगवदाश्रय को मुक्ति का साधन निरूपित किया गया है, वहीं आगम शास्त्रों में—

'श्री सुन्दरी पूजन तत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव' कहा गया है। उस दृष्टि से अर्थ होगा कि हे माता ! जन्मान्तर-चक्रों से व्याकुलित मुझे अब इस जन्म में जीवन का पर अर्थात् उत्कृष्ट एवं ऐश्वर्य समृद्धि सम्पन्न जो भी विशिष्ट अनुभव है, वह प्राप्त कराइये'।

परमनुभवं शब्द से शिव या शक्ति के मन्त्र गर्भित वागीश्वरी संस्कार का तन्त्र सम्मत सङ्केत भी प्राप्त होता है, क्योंकि शरीर के मातृकामय संस्कार से ही परम पुरुषार्थों की प्राप्ति हो सकती है। मातर्मातः शब्द से उस महाशक्ति को माताओं की भी माता अथवा द्विवचन से सम्पूर्ण चराचर जगत् की माता कहा गया है जिसका आशय यह है कि जब संसार की सामान्य माताएं अपनी सन्तान का ध्यान रखती हैं तो आप माताओं की भी माता होने के कारण चरण-शरण में आये मुझ बालक की प्रार्थना स्वीकार कर मुझे अवश्य ही इस जगज्जाल से छुड़ा देंगी, ऐसी अतिशयता का भाव ध्वनित होता है ॥१॥

इस प्रकार भगवती से एकान्तिक प्रार्थना कर और जन्मान्तर-चक्र से मुक्ति का निवेदन कर, अपने पापों के विनाश हेतु द्वितीय श्लोक में स्तोत्रकार कहते हैं—

मन्तूनन्तं गमय विहितान् जानताऽजानता वा
तन्तूँस्तन्तून् विदलय मदुल्लासिताँहोऽम्बरस्य ॥
किन्तून् किन्तूदितबहुदये ! स्वान्ततोन्यस्य बाह्ये
रन्तुं नन्तुं त्रिसमयमये ! सन्तु ते पादधूल्यः ॥२॥

हे माता ! मेरे द्वारा ज्ञान से अथवा अज्ञान से जो भी कर्म हुए हों, और उनके कारण यदि आपके चित्त में मेरे प्रति कोई रोष उत्पन्न हो गया हो तो उसे आप समाप्त करदें। साथ ही मेरे द्वारा बहुत से पापों का जो वस्त्र बुना हुआ है, उसके तन्तु-तन्तु का आप अलग-अलग करदें; उसे पूर्णतः नष्ट कर दें। मेरे प्रति आपके मन में किसी किंतु का उदय भी हो तो उसे अपने अन्तःकरण से बाहर निकाल दें; क्योंकि आप बहुत प्रकार से दया करने वाली हैं; अर्थात् आप दयामयी हैं तो यह विचार किसलिये करें कि मैं इस पर क्यों दया करूँ ? हे तीनों समय जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति काल में व्याप्त रहने वाली मां ! आपके चरणों की धूलि ही मेरे प्रणाम करने के समय और जीवन व्यापार चलाने के लिये सम्बल रूप में प्राप्त होती रहे अर्थात् मैं सदैव आपके चरण-कमलों की धूल में अवगाहन करता रहूं।

भाव यह है कि कर्म दो प्रकार से किये जाते हैं। पहले प्रकार के कर्म मनुष्य जानबूझ कर करता है। जानबूझ कर किये जाने वाले कर्मों में मनुष्य सावधानी बरत सकता है, किंतु दूसरे प्रकार के कर्म मनुष्य से अनजाने में ही हो जाते हैं, जैसे चलते समय अथवा श्वास-प्रश्वास लेते समय अनजाने में ही जीवों की हिंसा हो जाना आदि। स्तोत्रकार का आशय है कि ऐसे किसी भी मेरे द्वारा किये हुए कर्म से यदि आप रुष्ट हो गई हैं तो हे मां! उस रोष को त्याग दीजिये क्योंकि अनजाने में हुए कर्मों के लिये तो मैं विवश ही हूं, अतः आपका रोष करना उचित नहीं है।

अन्य स्तोत्रकारों ने भी ऐसा ही भाव प्रकट किया है—

'विहितमविहितंवा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे! श्रीमहादेवशम्भो!!

इस श्लोक में विशेष भाव यह है कि प्रथम श्लोक में विविध जन्मों के मूलस्वरूप का स्मरण करते हुए पूर्वजन्मों को गुरु-परम्परादि का स्मरण-नमनकर, इस द्वितीय श्लोक में शरीर-शुद्धि 'भस्मोद्धूलन' से संकेतित की गई है। आम्नाय ग्रन्थों में अन्तर्बाह्य-विशुद्धिपूर्वक ही स्तोत्र पाठ करने का विधान है। प्रथम श्लोक से अन्तश्शुद्धि और द्वितीय श्लोक से बहिश्शुद्धि भस्मस्नानादि अभिहित या ध्वनित की गई है।

प्रकृत श्लोक में पापसमूह का चित्रण वस्त्ररूप में किया गया है, जिसका आशय यह है कि जिस प्रकार बुनकर वस्त्र को बुनता है, चाहे स्वेच्छा से चाहे किसी के कहने आदि से; उसी प्रकार मनुष्य के कर्म भी विविध योनियों में जाने-अनजाने हो जाते हैं, अतः प्रार्थना की गई है कि उस ताने-बाने के तन्तु-तन्तु को अर्थात् कर्म करने या सञ्चित कर्मों के उत्पन्न होने की जो मूल स्थिति है, उसे ही नष्ट कर दो। बहुदये शब्द से बहुत लोगों पर दया करने वाली सम्बोधन की व्यङ्ग्यात्मक ध्वनि है कि जब आप बहुतों पर निसर्ग-करुणा करती हैं, चाहे वे आपके भक्त न भी हों तो क्या मुझ पर (बहुतों की अपेक्षा मात्र एक सामान्य प्राणी पर) दया नहीं करेंगी अर्थात् अवश्य ही करेंगी ॥२॥

अन्तर्बाह्य विशुद्धि के अनन्तर अब श्री भगवती के दिव्य-धाम का वर्णन करते हैं—

सौधं सौधं तुहिनकिरणाऽऽकीर्णकोणान्तरालं
शौद्धं बौद्धं परमसदनं धौतमौढ्यान्धकारम् ॥

नैधं वैधं प्रथमगणनापूजितं धाम कामं
सैद्धं सैद्धं जननि ! सततं वासगेहं भजेऽहम् ॥३॥

हे माता ! आपका वह दिव्य-धाम जिसमें आप निवास करती हैं, मैं सदैव उसको भजता हूँ। वह सुन्दर दिव्यधाम एक अमृतमय प्रासाद की भाँति है तथा शीतांशु चन्द्रमा की अमृतमयी किरणें उसके गर्भ-गृह के कोणों (किनारों) और उसके अन्त:भाग को सर्वदा आलोकित करती रहती हैं। जो पवित्रताओं का मूल है, ज्ञानस्वरूप है, अथवा शुद्ध-बुद्धस्वरूप भगवान शङ्कर का भी जो अधिष्ठान है तथा जिसके दर्शन या स्मरण करने मात्र से अज्ञान का अन्धकार नष्ट हो जाता है। जो समस्त निधियों और विधियों का स्थान है, और जिसकी सर्वप्रथम उत्कृष्ट स्थानों में गणना और आदर के साथ पूजा की जाती है, तथा जो सिद्धों और सिद्धियों का स्थान है, इस प्रकार के आपके निवास-गृह रूपी दिव्य-धाम की मैं निरन्तर उपासना करता हूँ।

भाव यह है कि चन्द्रमण्डल में भगवती का स्थान है, ऐसा सिद्ध-सम्प्रदाय द्वारा अभिहित है। चन्द्रमण्डल के स्तवन से पूर्ण-चन्द्रमा की षोड़शीअमृतकला–स्वरूपा महाविद्या की स्तुति ही इस श्लोक का ध्वन्यर्थ है।

'प्रथमागणनापूजितं' शब्द से श्रीगणपति का स्मरण भी सकेतित है; जो प्रत्येक कार्य की निर्विघ्न पूर्ति के लिये परमावश्यक है। इस स्तोत्र में अन्य सिद्धस्तोत्रों की भाँति भगवती बालाम्बा का पादादिकेशान्त वर्णन-स्तवन किया गया है। सर्वत्र अन्धकार-निरसन के भाव से दिग्बन्धन का भाव भी मानसी पूजाक्रम के अनुरूप इस पद्य से व्यञ्जित होता है।

इस प्रकार भगवती के दिव्यधाम का वर्णन कर, प्रपत्तिपूर्वक निवेदन करते हैं—

दीनोद्धारप्रवण-हृदया नास्ति धन्या त्वदन्या
ह्येवं विद्वज्जनवदनतो वर्ण्यमानं निशम्य ॥
दीनोऽत्यन्तं सदयहृदये ! ते वरेण्यं शरण्यं
प्राप्तस्तस्माच्छरणमधुना पादपद्मद्वयं तत् ॥४॥

हे माता ! विद्वान् लोगों के मुख से यह सुन कर कि 'दीनजनों के उद्धार करने में सदा जिनका हृदय लगा रहता है, अर्थात् जो हृदय से दीनों

उद्धार करना चाहती रहती हैं, ऐसी आपके अतिरिक्त करुणामयी अन्य कोई हैं ही नहीं' अतः विद्वानों की इस बात पर विश्वास कर, हे दया-युक्त हृदय वाली माँ ! मैं, आपकी शरण में आया हूँ और इसीलिये आपके दोनों चरण-कमलों की शरण मैंने प्राप्त की है ।

भाव यह है कि निराश्रित व्यक्ति किसी परम कल्याणमय आश्रय की खोज करता रहता है और जानकार लोगों से इसकी जिज्ञासा करता रहता है; जब उसे ठीक पता मिल जाता है, तो वह उसके लिये प्रयास करता है । अनन्य-भाव से शरणागत होकर जो चरण-शरण में प्राप्त हुआ है, उस पर दयामयी माता की अवश्य ही कृपा होगी, इसमें सन्देह नहीं । योग--दर्शन के अनुसार सिद्धि या सफलता के लिये श्रुति और अभ्यास आवश्यक हैं । श्रुति यहाँ शास्त्र अथवा विद्वद्वाक्य हैं अभ्यास के लिये शरण-प्रपन्नता का संकेत किया गया है । 'विद्वज्जनवदनतोवर्ण्यमानंनिशम्य' वाक्य से यह सूचित होता है कि श्रीसद्‌गुरूपदिष्ट मार्ग से ही साधना करने से सफलता मिलती है । प्रकृत पद्य में गुरुपरम्परा का स्मरण भी साधनारम्भ में किया जाना ध्वनित है ।

इस श्लोक में भगवती पराम्बा बालात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान वर्णित है, जो स्तोत्रकी अधिष्ठात्री हैं ।

स्फूर्जद्राकाहिमकरमुखी कुन्ददन्ताभिरामा
लाक्षापङ्कारुणिमचरणा पक्वबिम्बाधरा माम् ॥
बालं बाला स्फटिकगुलिकामालिका पुस्तिकाढ्या
त्रासत्राणाऽभिलषितकरा सन्ततं पात्वपायात् ॥५॥

पूर्ण प्रकाशमान रात्रि (पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान जिनका मुख-कमल है, और कुन्द की कलिका के समान सुगौर सुन्दर दन्त पंक्तियों का स्वरूप है, लाक्षा-कर्दम (घनी लाख) के समान अत्यन्त लालरङ्ग के जिनके चरण-कमल हैं, और पके हुए बिम्बा-फलों के समान जिनके अधर हैं, जो रक्तवसना हैं, स्फटिक गुटिकाओं की माला (अक्षमाला) तथा पुस्तक, एवं त्रस्त व्यक्तियों को त्राण देने वाली (अभयमुद्रा) और अभि-लषितार्थ प्रदान करने वाली (वर मुद्रा) जो धारण करती हैं, ऐसी भगवती बालात्रिपुरसुन्दरी मुझ बालक की सर्वदा आपत्तियों से रक्षा करती रहें ।

इस श्लोक में मातृ-भाव से जगदम्बा के श्रीचरणों में यह प्रार्थना की गई है कि वे वात्सल्य-भाव से स्तोत्रकार और इस स्तोत्र से स्तवन

करने वाले उनके पुत्रों की सर्वदा रक्षा करती रहें। श्लोक में एक ही पद से दो मुद्राओं का अध्याहार करते हुए चतुर्भुजा भगवती के स्वरूप का वर्णन किया गया है, जैसा कि तन्त्रग्रन्थों में ध्यान वर्णित है—

रक्ताम्बरां चन्द्रकलावतंसां
समुद्यदादित्यनिभां त्रिनेत्राम् ।
विद्याक्षमालाऽभयदानहस्तां
ध्यायामि बालामरुणाम्बुजस्थाम् ॥६॥

श्लोक में क्रम अवश्य कुछ भिन्न है, जो तन्त्रान्तर के अनुसार है। तन्त्रान्तरों में बालाम्बा का ध्यान इस प्रकार भी उपलब्ध होता है—

अरुणकिरणजालैरञ्जिताशावकाशा
विधृतजपवटीका पुस्तकाऽभीतिहस्ता ॥
इतरकरवराढ्या फुल्लकह्लारसंस्था
निवसतु हृदि बाला नित्यकल्याणशीला ॥

इस पद्य में उपर्युक्त ध्यान के अनुकूल ही क्रम दिया गया है, जो अर्चन-क्रम के अनुकूल है।

संसाररूपी समुद्र में डूबे हुए लोगों को तारने वाली भगवती ही हैं, इस भाव से स्तोत्रकार कहते हैं—

संसाराब्धौ कलुषमसृणे मज्जतां त्वं नराणां
पोतः कोऽपि स्फुरसि इति यच्छ्रूयते भक्तवर्गे ॥
तच्चेत् सत्यं जननि ! गणनातीतकारुण्यमूर्ते !
निर्वेदं मे हर हरमुखादुद्गते ! त्वत्सुतस्य ॥७॥

हे माता ! संसार रूपी कलुष-पूरित (कष्टों से भरे) समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों को (इस असहाय अवस्था से) उबारने के लिए भक्तजनों में जिस किसी जहाज की चर्चा सुनी जाती है (वह जहाज मात्र आप स्वयं ही हैं) अतः यदि यह बात सही है तो हे माँ ! क्योंकि आपकी करुणा की कोई सीमा नहीं है, अतः हे करुणामयी माँ ! अपने इस पुत्र के निर्वेदों (कष्टों) को दूर करो।

'हरमुखादुद्गते' सम्बोधन अत्यन्त ध्वनि-परक है। तंत्र-शास्त्र में भगवती की उत्पत्ति भगवान शङ्कर के मुख से मानी गई है। रत्नावली स्तव में श्रीबगलोत्पत्ति प्रसङ्ग में——हरस्यामुखात् तस्मात्त्वं बगलेतिदेवि कथिता नित्या परा योगिनी' कहा गया है, अतः यह भाव आगमानुमोदित है।

भगवान् शङ्कर संहार-मूर्ति भी माने गये हैं, संहार-मूर्ति से ही जिनकी उत्पत्ति है, ऐसी महादेवी के स्मरण-मात्र से संहृति या अनिष्ट के भय का निर्मूल होना स्वाभाविक है। आगम-शास्त्र का प्रणयन भी शिव-पार्वती के संवाद रूप में हुआ है। शङ्कर भगवान् प्रोक्त आगम ग्रन्थों का सार भी यही है कि कष्टों की निवृत्ति के लिये जगदम्बा के चरण-कमलों का आश्रय लेना ही उचित है, अतः सांसारिक कष्टों के समुद्र से पार उतरने के लिये कातर-प्रार्थना आगम-शास्त्रों के सार-सर्वस्व को भी इङ्गित करता है।

इस पद्य से १३ वें पद्य तक भगवती से सोपालम्भ निवेदन किया गया है—

दीनाऽऽक्रन्दःश्रवणयुगले नाऽऽगतस्तेऽस्तिकिंवा
श्रुत्वाऽपि त्वं जननि ! रभसात् कर्णयुग्मं पिधत्से ॥
आहोस्विन्मां गतनयतया मन्यसे पापयुक्तं
सत्यं सत्यं झटिति वद मां कारणं किं तदत्र ? ॥ ७॥

हे माता ! मुझ दीन (अनन्य-भावाश्रित) पुत्र की करुणगुहार क्या आपके कानों तक नहीं पहुंची ? या आप उस गुहार को सुनकर भी अपने कानों को स्वेच्छा से मूँदकर जानबूझकर चुप जबर्दस्ती बैठी हुई हैं ? अथवा आप मुझे धृष्ट पापी मानती हैं, बताइये माँ क्या कारण है ? (जो आपकी मुझ पर अभी तक कृपा नहीं हुई है)

इस पद्य में भक्त ने आर्त स्वर में भक्ति की अतिशयता से प्रार्थना की है, और बाल-सुलभ-वृत्ति से सान्निध्य भाव में अभ्यर्थना की है।

पापापायप्रकरणपटु त्वत्पदाब्जं विदित्वा
पापोपेतो जननि ! सकलां लोकलज्जां विहाय ॥
सम्प्राप्तस्ते चरण-शरणं कान्दिशीकोऽहमारा—
त्त्राणात्त्राणे ! कुरु यदुचितं मानसे त्वं विविच्य ॥८॥

हे माता ! आपके चरणकमलों को यह जानकर कि उनका आश्रय समस्त पाप-तापों को विनष्ट कर देता है, पापों से घिरे हुए इसीलिये भय-त्रस्त होकर दीन-भाव से सभी प्रकार की लोकलाज को छोड़कर, मैंने उन्हीं का आश्रय ले लिया है; इसलिये त्रस्त जनों की रक्षा करने वाली हे माँ ! अब आप ही अपने मन में जैसा उचित हो, वैसा सोच कर अपने पुत्र की रक्षा या अरक्षा करने का विचार करें।

अनन्य-शरण-भावापन्न भक्तगण अपने इष्ट की इच्छा पर ही अपने समस्त व्यापार समर्पित कर देते हैं, क्योंकि उन्हें प्रभु-करुणा में दृढ़–निष्ठा रहती ही है। प्रार्थना रूप में—

'एवं ज्ञात्वा महादेवि ! यथेच्छसि तथा कुरु' जैसे वाक्य मिलते ही हैं।

अम्बा डिम्भं त्यजति वद किं क्वापि दुर्नीतियुक्तं
शिक्षां सम्यग्वितरतितरां प्रत्युत स्वाङ्कगाय ।
एवं लोके जननि ! सततं दृश्यतेऽतो ब्रुवेऽहं
शिक्षाभाजं कुरु झटिति मामङ्कमारोप्य पश्चात् ॥९॥

हे माता ! संसार में यह देखा जाता है कि कोई भी माँ अपने बहुत छोटी आयु के पुत्र का त्याग कभी भी नहीं करती । यदि वह पुत्र दुष्ट या दुर्बुद्धि युक्त होता है तो उसे समुचित शिक्षा देकर सुयोग्य बनाती रहती है; क्योंकि पिता से भी पहले पुत्र पर माता का अधिकार होता है, और यदि कोई पुत्र अज्ञ या अशिक्षित रह जाता है तो उसमें पुत्र की ही नहीं उसको माता की भी वचनीयता (निन्दा) होती है; इसलिये हे माँ ! मैं भी आपसे यह कहता हूँ कि यदि आप मुझे दुर्नीतियुक्त मानती हैं तो मुझे भी छोटे बच्चे की तरह पहले गोद में बिठाकर, बाद में झट से समुचित शिक्षा प्रदान कर, योग्य और समर्थ बनाइये ।

इसी तरह का भाव श्रीदेव्यपराधक्षमापन स्तोत्र में भी आया है—

'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'

भाव यह है कि यदि मैं किसी भाँति अयोग्य हूँ भी तो यह भी आप का ही दोष है । भक्त, साधक अपने आराध्य से इसी प्रकार के उपालम्भ किया करते हैं, ऐसा अन्य स्तोत्रों में भी उपलब्ध होता है ।

विद्वद्वृन्दैरभिमतफलप्रेप्सुभिः सन्ततं या
स्तोत्रस्तोमैर्मधुरमधुरैः स्तूयसे भक्तिनम्रैः ।
श्रद्धोपेतैरखिलनिगमागोचरस्वात्मरूपे !
सा पाहि त्वं निजशरणगं साम्प्रतं विश्वमातः ! ॥१०॥

हे विश्वमाता ! बड़े-बड़े विद्वानों ने श्रद्धापूर्वक अपने इच्छित फलों की प्राप्ति के लिये भक्तिभाव से नम्रता पूर्वक अत्यन्त-मधुर-स्तोत्र-समूहों से

आपकी निरन्तर अभ्यर्थना की है। हे माता! समस्त निगमों (वेदादि शास्त्रों) के द्वारा आपके ही स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है अथवा समस्त नैगमिक वाङ्मय भी आपके स्वरूप का प्रतिपादन करने में असमर्थ हैं; ऐसी स्थिति में मैं आपके स्वरूप का क्या स्तवन कर सकता हूँ? (मेरा तो इतना ही निवेदन है कि) हे माँ! अपनी शरण में आये हुए इस पुत्र की आप रक्षा करें।

ग्रन्थों में जगदम्बा को 'वेदैकवेद्या' कहा गया है। इस पद्य में मातृ-भाव का विराट् स्वरूप वर्णित है, और साधना का क्रम भी। पहले निज-जननी भाव से वैयक्तिक निष्ठा तदनन्तर व्यष्टि से समष्टि भाव में बढ़ते हुए विश्व-मातृत्व-शक्ति के रूप में पराम्बा का स्तवन किया गया है।

पुण्योपेतान् भगवति ! यदि त्वं कृपाभाजनानि
ज्ञात्वा स्वीये चरणकमले प्रापयस्यम्ब ! लोकान् ।
माहात्म्यं ते न किल भविता मादृशोद्धारजन्यं
धन्यं लभ्यं क्व वद सुयशः सर्वलोकातिशायि ? ॥११॥

हे भगवति! हे माता! आप यदि पुण्यशाली पुरुषों को ही यह जान-कर कि वे पुण्यकर्मा हैं, इसलिये उन्हें कृपा-पूर्वक (अनुग्रह के लिये उचित मानकर) अपने दिव्य लोकों की प्राप्ति कराती हैं, तो इसमें आपकी कुछ भी बड़ाई नहीं है, क्योंकि यह तो अत्यन्त साधारण बात है। बड़ी बात तो यह है कि मुझ जैसे अपुण्यकर्मा व्यक्ति को भी आप उत्तम लोकों की प्राप्ति करावें। इस कार्य से ही आपका यश बढ़ सकता है, तो फिर बताओ, आपको सब लोकों में उत्कृष्ट ऐसा सुयश प्राप्त करने का अन्य अवसर कहाँ मिलेगा? इसलिये अच्छा है कि आप मुझ जैसे व्यक्ति का उद्धार कर इस अनायास अवसर से प्राप्तव्य सुयश को अवश्य ही अङ्गीकार कर लें।

भाव यह है कि पुण्य करने वालों को उत्तम लोक प्राप्त होते ही हैं, इसमें कर्मफल की प्रधानता है ईश्वराऽनुग्रह की नहीं। स्तोत्रकार का कहना है कि पापीजनों को उत्तम लोकों की प्राप्ति हो, तभी ईश्वराऽनुग्रह का परिणाम मानना चाहिये। 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं' जो परमेश्वर का विशेषण है, उसे चरितार्थ करने का अवसर मुझ जैसे अपुण्यकर्मा पर अनुग्रह करने से अब प्राप्त हो गया है, अतः अनायास मिलने वाले इस यश को प्राप्त करने से हे माँ! आप क्यों विमुख हो रही हैं? उसे शीघ्र प्राप्त कर लीजिये।

इन्द्रोपेन्द्रप्रभृतिदिविषद्वृन्दमन्दादरोऽहं
मन्दाराभं तव भगवति ! प्राप्य पादारविन्दम् ।
नो चेल्लब्धा प्रकृति--मधुरं ते कृपाख्यं मरन्दं
कं कं देशं जननि ! वद मां कान्दिशीको व्रजानि ? ॥१२॥

हे भगवति ! हे माता ! इन्द्र-विष्णु प्रभृति अन्य सब देवताओं के प्रति मेरे हृदय में कोई विशेष आदर नहीं है; इसलिये उन सब देवताओं को छोडकर कल्पवृक्ष के समान आपके चरण-कमलों का अनन्य-भाव से मैंने आश्रय ग्रहण कर लिया है। अब आपके चरण-कमलों का आश्रय ग्रहण कर लेने के पश्चात् भी यदि मुझे आपकी कृपा-रूप मधुर-अमृत-मधु प्राप्त नहीं हुआ तो हे माँ ! मुझे यह बतलाओ, कि भयभीत हुआ मैं, अब किस-किस स्थान की तलाश में भटकता फिरता रहूँ या आपको छोड़कर कहाँ-कहाँ जाऊँ ?

वास्तव में भाव यह है कि निरन्तर-जन्मान्तरों से जब अन्य स्थानों में भटकते रहने पर भी मुझे कहीं चैन नहीं मिला तो इस जन्म में मैंने विद्वानों की शरण ली और जब विद्वानों ने यह बतलाया कि माता के सिवा कोई दूसरा आश्रय नहीं हो सकता तो अब मैं कहाँ जा कर किससे पूछूँ कि अन्य कौनसा आश्रय आपसे भी बढ़कर है, अतः आपसे ही पूछता हूँ और आप हो वह स्थान बतलायें जो आपसे भी बढ़कर हो।

श्रद्धाभक्तिप्रणयमधुरोदारबद्धाञ्जलीना--
मानन्दोद्यन्नयनविगलद्वाष्पपूरोज्ज्वलानाम् ।
हर्षोत्कर्षाऽस्फुटतमवचश्चातुरीधूर्वहानां
जङ्घालानां त्वमसि सुलभाऽव्याजकारुण्यमूर्ते ! ॥१३॥

हे अव्याज (नैसर्गिक) करुणा की मूर्ति ! हे माता ! श्रद्धा और भक्ति से युक्त प्रेम-पूर्वक अञ्जलि बांधे हुए, आनन्द से अध-मुँदे (पुलकित) नेत्रों वाले, जिनके नेत्रों से वाष्प-पूरित उज्ज्वल आनन्दाश्रु बह रहे हैं, और हर्ष के वेग से अस्फुट वचनों वाले (गद्गद वाणी वाले) ऐसे चतुर जङ्घाल (व्यग्र एवं वेगवाले) व्यक्तियों को ही आप सुलभता से मिल सकती हैं।

भाव यह है कि तादात्म्य-भाव वाले व्यक्तियों को ही भगवद्विग्रह की अनुभूति होती है। ध्यान की चरमोत्कर्षावस्था में पुलकित-नयन और गद्गद-वाणी वाले व्यक्तियों को ही अपूर्व-आनन्द की उपलब्धि होती है, इसे

हो सिद्धावस्था कहते हैं। श्रीमान् धर्माचार्य ने भी कहा है—

अविर्भवत् पुलक सन्ततिभिः शरीरै—
निष्यन्दमानसलिलैर्नयनैश्च नित्यम्।
वाग्भिश्च गद्गदपदाभिरुपासते ये
पादौ तवाम्ब ! भुवनेषु त एव धन्याः॥

दूसरा भाव यह है कि इस प्रकार से श्रद्धा-भक्ति-युक्त चतुर लोगों को ही आप भी सुलभ हैं ? (उपालम्भ रूप में) सामान्य-जनों को क्या सुलभ नहीं हैं ? अर्थात् उन्हें भी हैं, क्योंकि आप अव्याजकरुणा की मूर्ति हैं।

इस पद्य में भगवती बालम्बा के मन्त्रमय स्वरूप का मन्त्रोद्धार पूर्वक वर्णन करते हैं—

ऐन्द्रं स्थानं निजकरगतं मन्यते सारशून्यं
शौक्लीं कान्ति निजसुषमया शीतगोर्न्यक्करोति॥
भर्गः सौरं तवचरणयोर्ध्यानमाहात्म्यतोऽसौ
लोको मातर्जयति करुणाप्रावृडम्भोदचित्ते ! ॥ १४॥

हे वर्षाकालीन मेघ के समान करुणापूर्ण चित्तवाली करुणामयी माता ! वह आपका भक्त या उपासक जय-जयकार को प्राप्त है अर्थात् सबसे श्रेष्ठ है, जो इन्द्र का पद हाथ में आने पर उस इन्द्र पद को भी निः-सार या तुच्छ समझता है, और अपने शरीर की शुभ-शीतल निर्मल-कान्ति से चन्द्रमा की आभा को भी तिरस्कृत करता है तथा आपके चरण-कमलों के ध्यान करने के प्रभाव से सूर्य के शास्त्र-प्रसिद्ध भर्ग नामक तेज को भी वह आसानी से जीत लेता है अर्थात् आपके चरणों के ध्यान करने मात्र से साधक इन्द्र से अधिक समृद्ध, चन्द्रमा से अधिक कान्तिमान् और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी अनायास ही बन जाता है।

इस पद्य में भगवती श्री त्रिपुरा बालाम्बा के मूल-मन्त्र का प्रथम द्वितीय और तृतीय चरणों के आद्य पदों से अध्याहार किया गया है। ऐन्द्रं पद से वाग्भव बीज या सारस्वतबीज, शौक्लीं पद से कामकला बीज या कामराज बीज, भर्गस्सौरं पद से शक्तिबीज या तार्तीयबीज का उद्धार किया गया है। भगवतो के इस मूल-मन्त्र की उपासना, ध्यान और माहा-त्म्य का फल उक्त पद्य में वर्णित है।

भर्ग तेज ही वैदिक गायत्री-मन्त्र का प्रतिपाद्य है, अतः शक्ति की

उपासना निगमागमानुमोदित है, यह भी स्वतः सिद्ध है। इन्द्र को वैदिक मन्त्रों में यज्ञपति (अग्नि) कहा गया है। प्रकृत पद्य में सूर्य चन्द्र और अग्नि के उल्लेख से इड़ा पिङ्गला और सुषुम्णा नाड़ियाँ भी संकेतित हैं, इन तीनों नाड़ियों पर जो साधक अधिकार कर लेता है, वह 'परमात्मतत्त्व' का प्राप्त कर समस्त सिद्धियों का सहज ही स्वामी बन जाता है, अतः उक्त योग साधना का संकेत भी इस पद्य में किया गया है। चन्द्रमण्डल में भगवती का अधिष्ठान है, यह आगम-सिद्ध है। जब मूलमन्त्र का न्यास करते हुए साधक अपने शरीर को मन्त्रमय बना लेता है, तब वह शरीर 'देवोभूत्वा देवं यजेत' न्याय से सामान्य नहीं रहता, अपितु भगवद्विग्रह बन जाता है, तब ऐसे शरीर से प्रकृत चन्द्रमा का तिरस्कृत हो जाना सर्वथा सम्भव है।

श्रीत्रिपुरा बालाम्बा के मूल-मन्त्र का श्रीक्रोधभट्टारकप्रणीत महिम्नःस्तोत्र में भी इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

इत्थं त्रीण्यपि मूलवाग्भवमहा श्रीकामराजस्फुर-
च्छक्त्याऽऽख्यानि चतुश्श्रुतिप्रकटितान्युत्कृष्टकूटानि ते ॥
भूततुंश्श्रुतिसंख्यवर्णविदितान्यारक्तकान्ते ! शिवे !
यो जानाति स एव सर्वजगतां सृष्टिस्थितिध्वंसकः ॥

पूर्व श्लोक में मन्त्रोद्धार का निरूपण करने के अनन्तर अब उसकी फलश्रुति का वर्णन करते हैं—

कर्णाभ्यर्णं विशति यदि ते मन्त्रवर्णः कदाचित्
चूर्णं-चूर्णं दलितदनुजे ! पापशैलं करोति ॥
तूर्णं पूर्णं रचयतितरां भक्तलोकाऽभिलाषं
कर्णाऽऽकर्ण्यां जगति विदितस्ते सदैवं प्रभावः ॥१५॥

हे दुष्टों का दलन करने वाली माता ! यदि कभी किसी के कानों में (अनायास ही) आपक मन्त्र का कोई भी वर्ण पड़ जाय तो उसके श्रवण-मात्र से उस व्यक्ति के पापों के पहाड़ चूर-चूर हो जाते हैं; अर्थात् वह पुण्यात्मा बन जाता है। (वर्ण मात्र के सुनने से जब यह प्रभाव हो जाता है तो दीक्षा पूर्वक सविधि मन्त्रानुष्ठान के फल की क्या महिमा ?) हे माता ! कानों-कानों यह बात सुनी जाती है कि संसार में भक्त की अभिलाषा पूर्ण होने में और पापों के समूहों को नष्ट करने में आपके मन्त्र के अक्षर मात्र का यह प्रभाव है। 'कानों-कानों सुनी' से तात्पर्य यह है कि कि यह बहुत प्रसिद्ध बात है और श्रुति (वेद) की भाँति प्रामाणिक है।

लघुस्तव में श्रीमान् धर्माचार्य ने भी—"दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं येनाऽऽकूतवशादपीह वरदे ! बिन्दुं विनाऽप्यक्षरम्' कह कर इस भाव की पुष्टि की है।

भगवती के मन्त्रजाप से उत्पन्न हुई आनन्दावस्था का वर्णन करते हैं—

प्रासादान्तस्तुहिनकिरणोद्भूत पीयूषसिन्धोः
पीत्वाऽऽकण्ठं विमलममृतं मृत्युभीति प्रणाशि ॥
धन्यो मत्तः सकलभुवने नास्ति कोऽपीति जानन्
योगी कश्चिद्रसयति रसं मातरानन्दरूपम् ॥१६॥

हे माता ! मृत्यु के भय को नष्ट करने वाले प्रासाद रूपी घट शरीर के अन्तर्वर्ती चन्द्रमण्डल रूपी सहस्रार मूलबिन्दु-प्रासाद से उत्पन्न हुए अमृत रस को आकण्ठ पीकर मस्त हुआ कोई विशिष्ट योगी ही आनन्द रूपी रस का सेवन करता है। आगमिक योग-शास्त्र के अनुसार आदि क्षान्त मन्त्रमय शरीर है। कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर चन्द्रमण्डल का भेदन कर समाधि-अवस्था में अमृत पान किया जाता है और ऐसी नित्य सिद्धअवस्था जिन योगियों को प्राप्त हो जाती है, उनका व्यष्टि-समष्टि भेद स्वतःनष्ट हो जाता है एवं उन्हें ही अहन्ता-विमर्श परिपूर्ण रूप में होता है। उसीकी ओर उक्त पद्य में इङ्गित किया गया है। ऐसी सिद्ध-दशा प्राप्त व्यक्ति सर्वत्र अपना ही स्वरूप देखते हैं, अतः यह स्वभाविक है कि वे सदैव स्वात्मनिष्ठ रहकर अपने से भिन्न किसी को नहीं जानें। प्रासाद-बीज से तात्पर्य शक्तिबीज का है, अतः पद्य में शक्ति-बीज के जप का माहात्म्य भी बतलाया गया है।

कुण्डलिनी शक्ति का जागरण क्रम और उससे प्राप्तव्य निर्वृति दशा का विवरण वामकेश्वर महातन्त्र में इस प्रकार दिया गया है—

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाऽऽशुभा ॥
मूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमल-कन्दवत्।
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता ॥
पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाऽऽविष्टमानसः ॥
वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।

ज्वलनाघात-पवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट् ॥
रुद्रग्रन्थि ततो भित्त्वा विष्णु ग्रन्थि भिनत्त्यतः ।
ब्रह्मग्रन्थि च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट् ॥
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते ।
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृतिकारणम् ॥

प्रकृत पद्य में उक्त सिद्ध-दशा का ही वर्णन किया गया है ।

संसार की असारता समझाते हुए भगवती के चरणकमलों की भक्ति ही साधकों का सर्वस्व है, यह बतलाते हैं—

विश्वासार्हं नहि जगदिदं भासमानं समन्ताद्
मिथ्याभूतं जलधि-विविधोल्लोलकल्लोतुल्यम् ॥
मत्वा मत्या गलितमलया वस्तुतः सारभूते
योगी कश्चिद्विरमति हिते पादपङ्कान्तरम्ब ! ॥१७॥

हे माता ! समुद्र में उत्पन्न हुई अनेक प्रकार की चञ्चल-लहरों के समान विविध रूपों में दिखलाई पड़ता हुआ यह संसार विश्वास के योग्य (नित्य) नहीं है, क्योंकि यह (ब्रह्म का विवर्त होने के कारण) मिथ्या है, किंतु इस निगूढ़ तत्त्व को आपके चरण कमलों में दृढ़ भक्ति रखने के कारण जिनका चित्त निर्मल हो गया है ऐसे कुछ योगी ही जानते हैं, अथवा ऐसे योगी जनों के अद्वैत परक 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' प्रभृति संशय-समूहों का विराम वास्तविक रूप में आपके चरण-कमलों में ही होता है; क्योंकि सारवस्तु आपके चरण कमलों की भक्ति ही है। 'हिते' शब्द पद्य में द्वयर्थक है । हि ते अलग अक्षरों के करने पर निश्चय ही आपके चरण कमलों में और 'हिते' दोनों अक्षर मिलाने पर हिते अर्थात् अपने वास्तविक लाभ के लिये कोई पुण्यवान् योगी ही प्रयत्नशील होता है इस प्रकार का अर्थ निकलता है।

वेदान्त-दर्शन में केवल ब्रह्म को ही सत्य माना गया है और जागतिक समस्त पदार्थों को मिथ्या कहा गया है । वहाँ जीव और ब्रह्म में अद्वैत है किन्तु आगमिक विचारधारा में अद्वैत के स्थान पर अद्वय शब्द का उल्लेख किया गया है जिसका भाव दोनों (शिव शक्ति या जीव ब्रह्म) का सामरस्य है । वहाँ अद्वैत होते हुए भी द्वैत का वैशिष्ट्य है । शक्ति स्वतन्त्र होते हुए भी शिवमय है और शिव स्वतन्त्र होने पर भी शक्तिमान् हैं, अतः संसार को मिथ्या समझते हुए भी इस अद्वयावस्था को कुछ योगी

ही समझकर इस स्वातन्त्र्य का अनुभव कर पाते हैं; उक्त भाव ही इस पद्य में व्यञ्जित है।

परमतत्त्व की साधना के लिये योगावस्था का वर्णन करते हैं—

प्राणापानौ विजितपवनो मेलयन्नर्कचन्द्रौ
रात्रौ शून्यं पितृवनमथो गाहमानः समन्तात् ॥
दर्शं दर्शं दहरदहने होमयँस्तत्त्वजालं
आदिक्षान्तं जयति नृशिवस्त्वत्पदध्यानमग्नः ॥१८॥

हे माता ! आपके चरणकमलों के ध्यान में डूबा हुआ शिव-स्वरूप मनुष्य (योगीन्द्र) आदि क्षान्त (अ से क्ष तक) वर्ण रूपी तत्त्वों के समूह को साधना के क्रम में सूर्य चन्द्र (इड़ा पिङ्गला) प्राण और अपान को मिलाकर पवन (वायु—सुषुम्णा) के साथ भली भाँति जीतकर, जो रात्रि में पितृवन (श्मशान) में जाकर (या स्थित होकर) अथवा जागतिक व्यापार से ऊँचा उठकर हृदय प्रदेश में जो देख-देख कर (तत्त्व समूह का) अग्नि में हवन करता है, ऐसी अनुपम दशा को प्राप्त योगी के सौभाग्य का क्या कहना ? वह तो जय-जयकार करने योग्य है अर्थात् सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि वह मनुष्य रूप में साक्षात् शिव ही है।

भाव यह है कि प्रत्येक मास में दो पक्ष होते हैं। प्रतिपदा से पूर्णिमा तक शुक्ल पक्ष और पुनः प्रतिपदा से अमावास्या तक कृष्णपक्ष। प्रतिपदादि तिथियाँ नित्याएँ हैं। शुक्ल पक्ष प्रसार-क्रम है और कृष्ण पक्ष संकोच-क्रम। अमा को सूर्यचन्द्र एक राशि में रहते हैं, अतः दर्श तिथि मूलरूप है, उसमें शिव-शक्ति सामरस्य रूप बिन्दुका एकीभाव रहता है, इसीलिये (अ=शिव+मा=शक्ति) उसे अमा कहते हैं। इस एकात्म-भाव का अनुभव सामान्य जनों को नहीं होता। पूर्णिमा पूर्ण-विकासावस्था है, इस संकोच-प्रसार के व्यापार को जिसमें आदिक्षान्त तत्त्व हैं, हृदयाकाश में अधिष्ठित कर जो योगी इन तत्त्वों के संघ का मूल-स्वरूप पहचान लेता है वही साक्षात् शिव है, इसमें सन्देह नहीं।

पितृवन शब्द से यहाँ पर श्री विद्या की वाममार्गानुगा साधना भी संकेतित है।

इस पद्य में विशेषकर आगमिक योग-साधना का संकेत दिया गया हैं। सूर्य और चन्द्र देवयान-पितृयान मार्ग के अधिष्ठाता हैं और इन्हीं दोनों की इड़ा पिङ्गला नामक नाडियों से अहोरात्र का संचरण होता रहता है। चन्द्र वामनाड़ी से संचार करता हुआ बहत्तर हजार नाड़ियों के मार्ग

को अमृत से सिंचित करता है और सूर्य दक्षिण नाड़ी से सवार करता हुआ उन अमृत बिन्दुओं का आहरण करता रहता है। जब सूर्य चन्द्रमा का (इड़ा और पिंगला नाड़ियों का) आधार चक्र में समावेश होता है तो अमावस्या तिथि होती है। आधार चक्र में सोई हुई उस कुण्डलिनी का, समाहित्त चित्त होकर सूर्य चन्द्र नाड़ियों के निरोध करने पर, तत्त्व जालों का हवन होकर जागरण हो जाता है और ब्रह्म, विष्णु रुद्र तीनों ग्रन्थियों का भेदन हो जाता है। मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्रात्मक अग्नि स्थान ही रुद्र ग्रन्थि है, मणिपूर-अनाहत चक्रात्मक सूर्य स्थान ही विष्णु ग्रन्थि है एवं विशुद्धि-आज्ञा चक्रात्मक चन्द्र स्थान ही ब्रह्मग्रन्थि है। इस प्रकार शिव शक्ति सामरस्य युक्त अद्वयरूपा अमावस्या का महत्त्व सुस्पष्ट है। प्रतिपत् से अमा और पूर्णिमा पर्यन्त नित्याओं (तिथियों) के पूजन से सौभाग्य वृद्धि होती है। सङ्केत पद्धति में लिखा है—

प्रतिपत्प्रभृता देव्यः पौर्णमास्यन्तिकाः क्रमात्।
एकैकां पूजयेद्यो हि स सौभाग्यं परं लभेत्॥

श्री अमृतानन्द योगी प्रणीत सौभाग्य सुधोदय में भी इसी भाव की पुष्टि की गई है—

तिथयश्च कला नित्यास्तदात्मिकाः स्युस्तथैव तत्संख्यैः।
वर्णैः समष्टिरेषा विद्या व्याप्नोति तानि सर्वाणि ॥१८॥

जन्मान्तरों की उपासना के फलस्वरूप अथवा इस जन्म की उपासना से ही आत्मज्ञान का होना बतलाते है।

वेदान्तैकप्रवणमतयस्तत्त्वमस्यादि वाक्यै-
र्ज्ञात्वाऽऽत्मानं विमलमचलं निर्विकारं समग्रम्॥
आत्मध्यानाऽमृतरससमास्वादनैकप्रवीणा-
स्त्वत्पादाब्जार्चनशुभवशात् सन्ति जन्मान्तरेते॥ १९॥

हे माता! 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों द्वारा वेदान्त के विद्वान् लोग निर्विकार, अचल, शुद्ध और पूर्ण जिस आत्म-तत्त्व का अनुभव कर आत्मा और परमात्मा के ऐक्य रूपी 'अहं ब्रह्मास्मि' इस भाव के अनुभव करने में समर्थ हो जाते हैं, उनकी इस अद्वैतदृष्टि प्राप्ति का मूल-कारण आपके चरण-कमलों की जन्मान्तरों में की गई पूजा का एकत्रित फल ही है।

भाव यह है कि जीव ब्रह्म का अंश है, और जिस प्रकार प्रकाश लुप्त होने पर महाप्रकाश में मिल जाता है, उसी प्रकार जीव ब्रह्म में मिलने के

लिए सचेष्ट रहता है और यही पुरुषार्थ की चरम परिणति है। जीव और ब्रह्म की भेद-दृष्टि का पर्यवसान परमज्ञान से होता है एवं यह अद्वैतज्ञान भी जन्मान्तरों की साधना के फलस्वरूप जो अर्जित होता है, वह पूर्णाहन्ता-विमर्श भी पराम्बा के अनुग्रह से ही प्राप्त होता है। अर्थात् जीवन में अद्वैत की अनुभूति भी आपके चरणकमलों की अर्चना के फल से ही होती है। गीता में भी कहा है—'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्'। अथवा दूसरा भाव यह भी है कि 'तत्त्वमसि' आदि वेदान्त सम्बन्धी वाक्यों के अनुसार ब्रह्म का साक्षात्कार भी आपके चरण-कमलों की अर्चना के फल-स्वरूप ही इसी जीवन में अथवा जन्मान्तरों में होता है, इसका अन्य हेतु हो ही नहीं सकता। आद्य शङ्कराचार्य भगवान् को भी श्रीपराम्बा के चरण-कमलों की अर्चना से ही अपरोक्षानुभूति हुई थी, जिसके प्रमाणरूप में श्रीसौन्दर्यलहरी स्तोत्र सुप्रसिद्ध ही है॥१९॥

अब सारस्वत बीज की फलस्तुति बतलाते हैं—

प्रालेयाद्रिप्रतिममभितः पाण्डिमादीप्तिपूर्णं
राकाचन्द्रायुतशतनिभं संस्रवद् दिव्यपेयम्॥
मूर्ध्नि स्फूर्जज्जननि ! सततं तावकीनं स्वरूपं
धन्याः केचित् कविमुकुटताप्राप्तिहेतुं स्मरन्ति॥२०॥

हे माता ! हिम के शिखर के समान और चारों ओर जिसके स्वर्णिम प्रकाश फैल रहा है, तथा करोडों पूर्णिमा के चन्द्रमाओं के समान जिसकी समुज्ज्वल कान्ति है, ऐसे आपके सुन्दर स्वरूप के तरल दिव्य-पेय जैसे प्रकाश को अपने मस्तक पर आभासित होता हुआ, कविकुलगुरुत्व-प्राप्ति के कारण को कुछ धन्य (श्रेष्ठ) व्यक्ति हो स्मरण करते हैं।

भाव यह है कि क्रमानुसार पूर्णाभिषिक्त कुछ लोग ही होते हैं, और वे धन्य हैं ही, उनके लिये श्रेष्ठ कवित्व प्राप्त होना सामान्य बात है।

दूसरी बात यह है कि ज्ञान की प्राप्ति के लिए भगवान् शङ्कर की उपासना करनी चाहिए क्योंकि 'ऋते ज्ञानान्न शङ्करः' इस प्रमाण से यह बात सिद्ध है। भगवान् शङ्कर का स्वरूप परमगौर है, अतः 'प्रालेयाद्रि-प्रतिमं' एवं 'राकाचन्द्रायुतशतनिभं' से यही भाव ध्वनित होता है।

गौर एवं स्वर्णकान्ति से युक्त उपासना का तात्पर्य सामरस्य भावना से है। गौर वर्ण से शिव और स्वर्ण कान्ति से शक्ति का स्वरूप व्यञ्जित किया गया है। यही महाशाक का स्वरूप भी है। मस्तक पर दिव्य गौर वर्ण

प्रकाश के स्मरण से श्री गुरु एवं गुरुपादुकाओं का स्मरण-पूर्वक भगवती की उपासना करने से कवित्त्व प्राप्ति होती है, यह भाव भी ध्वनित होता है ।।२०।।

सारस्वत बीज की अन्य फलस्तुति कहते हैं—

स्मारं स्मारं जितशतशरत्पार्वणेन्दुप्रकाशं
वारं वारं शिरसि च सुधासारबीजं सुबोजम् ।।
वाचां द्राक्षामधुरिमधुरं बिभ्रतीनां वदान्यं
मातर्नूनं कविकुलशिरोरत्नतामेत्ययत्नात् ।। २१ ।।

हे माता ! सैकड़ों शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के प्रकाशों को तिरस्कृत करने वाले प्रकाश रूप सुधासार बीज के बीजाक्षरों को बार बार अपने मस्तक पर अनुभव करने वाले व्यक्ति द्राक्षा की मधुरता से भी मधुर अपनी वाणी से कवियों के समूह में शिरोरत्न की भाँति परम श्रेष्ठता को प्राप्त करते हैं ।

भाव यह है कि सुधासार बीज (सोऽहम् स्वं अथवा स्हौं) को क्रम-दीक्षा पूर्वक प्राप्त कर आत्माऽनुभव द्वारा अपने मस्तक पर सुधावर्षण की अनुभूति जो करते हैं, वे व्यक्ति निश्चय ही अनायास कविजनों में श्रेष्ठ हो जाते हैं । 'अहम् सः' मैं वह हूँ या (हंसः, अ का लोप होने से) अथवा 'सोऽहम्' वह मैं हूँ ये दोनों तत्त्व-प्रतीतिपरक सुप्रसिद्ध वाक्य हैं, इनका साधना से एकात्माऽनुभव योगिजनों को ब्रह्मरन्ध्र में होता है । हसौं और स्हौं भी इसी प्रकार के आगम प्रोक्त बीज वर्ण हैं, इनका मस्तक पर ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करने से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, और वर्णमातृका की कृपा से महाकवित्त्व प्राप्त होता है । इसी ध्यान के सम्बन्ध में कहा गया है—

'हं सं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि' ।

इस पद्य में भगवती के मन्त्र गत बीज के जप और फल का प्रभाव भी अभिव्यञ्जित हो रहा है ।।२१।।

अब पुनः वाग्वादिनी-बीज की फल-स्तुति करते हैं ।

क्षीराम्भोधिप्रलयसमयोल्लोलकल्लोलतुल्यं
वाचां बीजं शिरसि सततं संस्मरन्तो हसन्तः ।
पीत्वा हालाहलमपि विषं प्राणमाकल्पमम्ब !
प्रज्ञावन्तो दधति करुणावीक्षणैकप्रवीणे ! ! २२ ।।

हे करुणामय नेत्रों से सर्वदा अपने पुत्रों को देखने वाली माता !! क्षीर समुद्र के प्रलय कालीन लहरों के उछलते प्रवाह के समान स्वरूपवाले

मातृकाओं (वाणियों) के मूलभूत बीजमन्त्र को, वाग्वादिनी के मूल बीज ऐं को जो सर्वदा अपने मस्तक पर विराजित स्मरण करते रहते हैं, ऐसे प्रज्ञावान् व्यक्ति हालाहल विष को पीकर भी सदा हँसते रहते हैं, अर्थात् उन्हें मृत्यु-भय व्याप्त नहीं होता; एवं वे प्रज्ञावान् कल्पान्तजीवी होते हैं।

भाव यह है कि श्रीविद्या की मूलविद्या बाला-त्रिपुरा हैं और उनके मूलमन्त्र का आदि बीज वाग्भव बीज है। उसके जप का फल यह है कि चिच्छक्ति का स्फुरण होने पर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। उसे विष भी अमृत तुल्य हो जाने से, उसका कुछ बिगाड़ता नहीं। भक्त शिरोमणि मीरा आदि के विषपान के उपाख्यान प्रसिद्ध ही हैं। तात्पर्य यही है कि वास्तविक साधक के जीवन में आने वाली बाधाएँ भी उसे विचलित करने में असमर्थ हो जाती हैं ॥२२॥

अब भगवती के स्वरूप को ध्यान करने का फल बतलाते हैं—

सद्यो जाग्रत्तदऽसितसिताम्भोरुहाभं स्वरूपं
कुन्दोदारं जननि ! विहच्चूर्णकर्पूरपूरम् ॥
ध्यायं ध्यायं जितसुरगुरोर्विश्ववन्द्यस्य नूनं
तस्याऽऽकल्पं प्रवहति महाकीर्तिपीयूषसिन्धुः ॥२३॥

हे माता ! तुरन्त खिले हुए श्वेतकमल की भाँति और उज्ज्वल कुन्द पुष्प के समान जिसमें पिसे हुए कपूर का चूरा भरा हुआ हो, इस प्रकार के उज्ज्वल धवल दिव्य आपके उस मञ्जुल स्वरूप को, जिसके समक्ष देवताओं के गुरु भगवान् शङ्कर जो कि समस्त संसार में बन्दनीय हैं, वे भी पराजित रहते हैं, निरन्तर ध्यान करने वाले भक्त की कीर्ति का विशाल समुद्र कल्प पर्यन्त लहराता रहता है, अर्थात् ऐसे भक्त की कीर्ति असंख्य वर्षों तक स्थायी रूप से बनी रहती है।

भाव यह है कि पूर्व श्लोक में वर्णित आपके मन्त्र-जप का ही अमित प्रभाव नहीं है, अपितु आपके स्वरूप के ध्यान करने का भी अनन्त प्रभाव है। श्वेत-कमल से नैर्मल्य का भाव है और इसमें वाग्भव बीज के ध्यान की फल-स्तुति है। 'जितसुरगुरोर्विश्ववन्द्यस्य' का तात्पर्य है कि भगवती के प्रथम बीज के ध्यान करने मात्र से साधक संसार में वन्दनीय हो जाने के साथ ही भगवान् शङ्कर के समान सिद्धियों का अधिष्ठाता अथवा देवगुरु बृहस्पति को भी अपनी वाग्मिता के प्रभाव से परास्त करने जैसी सामर्थ्य-वाला बन जाता है।

पूर्व पद्य में बीज मन्त्र या बीजाक्षर को मस्तक पर धारण करने का फल बतलाते हुए इस पद्य में उसके ध्यान का फल बतलाया गया है। 'आकल्पं' शब्द से कल्प पर्यन्त का अभिप्राय है कि न केवल मात्र साधक ही अपितु उसकी सन्तान परम्परा तक द्वितीय बीज के प्रभाव से स्थायी वैदुष्य और अक्षुण्ण कीर्ति बनी रहती है, यह भाव आगमानुमोदित है; इसीलिए आगमाम्नाय को कुलाचार भी कहते हैं।

बीज मन्त्र या बीजाक्षर को मस्तक पर धारण करते हुए, निरन्तर उसका ध्यान करने पर क्रमशः मन्त्रमय शरीर का निर्माण होता है और मनुष्य सिद्धि के सोपानों पर अग्रसर होता जाता है, अतः यह क्रम-विकास भी यहाँ व्यञ्जित है ॥२३॥

अब मध्यम बीज की उपासना का महत्त्व प्रदर्शित करते हैं—

उद्यद्भास्वत्किरणनिकरैरञ्जितां मञ्जुलाभां
मातर्ये त्वामधिहृदयगां शोणिमाणिक्यरम्याम् ॥
हर्षोत्कर्षात् पुलकविलसन्मूर्तयः संस्मरन्ति
त्रैलोक्यं ते क्षणसमयतः केऽपि सम्मोहयन्ति ॥२४॥

हे माता ! उदय होते हुए चमकीले सूर्य के किरणों के समूहों से रंगी हुई, लाल माणिक्य के समान सुन्दर कान्तिवाली आपकी मूर्तियों को (विविध स्वरूपों को) जो अपने हृदय में स्मरण करते हैं, वे उन मूर्तियों के स्मरण मात्र के प्रभाव से ही हर्ष के प्रवाह से पुलकित शरीर हो कर क्षण मात्र में ही, त्रैलोक्य को भी सम्मोहित करने में समर्थ रहने वाले कुछ लोग ही हैं।

भाव यह है कि सावरण देवताओं (परिवार–देवताओं) के स्वरूप सहित भगवती का स्मरण करने वाले व्यक्ति को वश्य सिद्धि अनायास प्राप्त हो जाती है और वह दृष्टि-निक्षेप मात्र से त्रैलोक्य को सम्मोहित कर सकता है। प्रकृत श्लोक में यन्त्र साधन और ध्यानादि संकेतित किये गयेहैं। केऽपि से तात्पर्य है कि सविधि यन्त्र-मन्त्राराधन कुछ लोग ही अधिकारी भेद से कर पाते हैं, अथवा आपके मन्त्र के वर्ण-मात्र के प्रभाव से ही जब मोक्ष रूपी इच्छित फल मिल जाता है, तो उससे आगे बढ़ कर त्रैलोक्य-विजय की कामना करने वाले तो कुछ लोग ही बच जाते हैं, और ऐसे कुछ लोग पूर्ण सकामानुष्ठानी चाहें तो क्षणभर में त्रैलोक्य को सम्मोहित कर सकते हैं क्योंकि निष्काम भाव से स्मरण करने वालों को तो आत्म-ज्ञान हो जाने

से त्रैलोक्य विजय की इच्छा ही नहीं रहती। तात्पर्यार्थ यही है कि भगवती की उपासना से अधिकांश जनों को अपरोक्षानुभूति हो जाती है, हाँ, कुछ ऐसे उनमें बच जाते हैं, जो साँसारिक वस्तुओं की कामना करते हैं, ऐसे कुछ लोगों को भी त्रैलोक्य भर की कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती यही आपके मध्यम बीज की उपासना का फल है ॥२४।

अब पुन: कामराज बीज की उपासना का फल बतलाते हैं—

उन्निद्राणामुषसि कमलासद्मनां शौरिणमानं
पिण्डीभूतं निजसुषमया शिक्षयन्तीं त्वदीयाम् ॥
भद्रां भद्रे ! सकलसमयं मूर्तिमम्ब ! स्मरन्तो
दारिद्रचोत्थां सकलविपदं तत्क्षणाद् द्रावयन्ति ॥२५॥

हे कल्याणरूपिणी माता ! उष: काल में खिले हुए कमल की अरुणिमा के समान लक्ष्मी के निवास स्थान की आभा के समूह को भी अपनी कान्ति से शिक्षा देने वाली अर्थात् उससे भी अधिक सुन्दर आपकी कल्याण कारिणी मूर्ति को सदा स्मरण करने वाले व्यक्ति दरिद्रता से उत्पन्न समस्त विपत्तियों को उसी समय नष्ट कर देते हैं।

भाव यह है कि कमला (लक्ष्मी) के निवास भूत जैसे—भगवती के रक्ताम्बरा स्वरूप का ध्यान करने वाले भक्त लोग स्वयं अपनी ही नहीं, दूसरे व्यक्तियों की भी दरिद्रता तुरन्त नष्ट कर देते हैं, अर्थात् उन्हें समस्त सिद्धियाँ अनायास प्राप्त हो जाती हैं।

वश्य अथवा ऐश्वर्य सिद्धि के लिए रक्तवर्णा भगवतो की उपासना एवं मूल मन्त्र के मध्यम बीज का सकाम अनुष्ठान भी इस पद्य में संकेतित है ॥।२५॥

द्वितोय बीज का पुनः स्तवन करते हैं—

गुञ्जापुञ्जद्युतिविहसने बद्धदीक्षैः समन्ता—
दुस्रस्तोमैरु॑चिरसुषमा दाडिमीपुष्परम्या ॥
बिभ्राणाना मनसि भुवनाऽऽभोगभोगे समीहां
मातर्मू॑तिः शरणसदनं भाग्यभाजां त्वमेव ॥२६॥

हे माता ! गुञ्जाओं के समूह की कान्ति को तिरस्कृत करने वाली और खिले हुए अनार के कुसुमों की शोभा के तुल्य आभामय चारों तरफ फैली हुई समन्तात् किरणों से शोभामयी कान्तिवाली आपकी मञ्जुलमूर्ति को, संसार के साम्राज्य अथवा भोगों को अधिकृत करने की इच्छा रखने

वाले भाग्य शाली ही अपने मन में शरण लेने का स्थान बना पाते हैं।

भाव यह है कि सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए भक्त लोग षट्-कर्मों में मुख्य और प्रथम वश्य सिद्धि के लिए जब प्रवृत्त होते हैं तो आपके रक्तिम स्वरूप का ही सर्वप्रथम ध्यान करते हैं क्योंकि यह वर्ण ही इस सिद्धि का मूल है। ऐहिक सफलता के साथ-साथ आमुष्मिक फल की उपलब्धि तो उन्हें स्वत: हो ही जाती है, यह माता के आराधन का परिणाम है। कहा भी गया है—

'श्री सुन्दरी पूजन तत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥'

अन्य भी—

गले माला मुखे हाला वामे बाला सुकोमला।
हृदये त्रिपुरा बाला यागशाला गृहे गृहे ॥२६॥

भगवती की भक्ति संसार में सर्वथा दुर्लभ है, इसका निरूपण करते हैं-

सत्सिन्दूरद्युतिमदपरीहारबद्धादराणां
माणिक्यानां किरणनिकरैर्मञ्जुलैर्मञ्जुलानाम् ॥
अन्तस्तापप्रशमनविधौ पण्डितानां भवत्याः
पादाब्जानां विहितशरणाः केचिदेवाऽत्र धन्याः ॥२७॥

हे माता! सुन्दर सिन्दूर की कान्ति के अभिमान को भी सादर तिरस्कृत करनेवाले और माणिक्यों की शोभा समूह के समान अथवा उससे भी रमणीयतम एवं हृदय के सन्ताप को स्मरण मात्र से नष्ट कर देने वाले आपके चरणकमलों की शरण लेने वाले, ऐसे कुछ लोग ही इस पृथ्वी पर हैं, जो धन्य हैं।

भाव यह है कि जगदम्बा की भक्ति जन्म:न्तरों के प्राक्तन सञ्चित पुण्यकर्मों के फलस्वरूप ही होती है। सर्वसाधारण की उधर प्रवृत्ति ही नहीं होती। जो इस जन्म में जगदम्बा की भक्ति करते हैं, उन्हें सकल सिद्धियाँ उनके तप: प्रभाव से करतलगतामलकफलवत् रहती ही हैं, पुनश्च परत्र में भी मुक्ति प्राप्त हो जाती है; अत: भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में ऐसे पुण्यवान् जन संसार में धन्य ही हैं और उनकी संख्या भी बहुत थोड़ी है, अर्थात् ऐसे कोई-कोई या कुछ ही हैं। ॥२७॥

मध्यम बीज की उपासना की भोगफलप्रदता बतलाते हैं—

मन्दारेभ्यस्त्रिदशतटिनीनीरसम्वर्द्धितेभ्यः
सूद्यल्लाक्षारसविजयिनां त्वत्पदाम्भोरुहाणाम् ॥
चिन्तामग्नान् मदनजयिनः सन्ततं कामतप्ताः
गीर्वाणानां चकितहरिणीप्रेक्षणाः कामयन्ते ॥२८॥

हे माता ! स्वर्गङ्गा के जल से परिवर्द्धित कल्पवृक्षों से तुरन्त निकाले गये लाक्षारस पर भी विजय पाने वाले (उससे भी अधिक शोभाशाली या अरुणिमा युक्त) आपके चरण कमलों का चिन्तन करते रहने वाले ऐसे जितेन्द्रिय (आत्मजयी या कामदेव को भी जीतने वाले) पुरुषों को, काम से सन्तप्त, चकित हिरणियों के समान चञ्चल नेत्रों वाली देवताओं की रमणियाँ सदैव सकाम भाव से चाहती रहती हैं।

भाव यह है कि श्री माता के चरण कमलों को जो भी व्यक्ति जितेन्द्रिय हो कर आराधना करता है, वह देवाङ्गनाओं का भी स्पृहणीय बन जाता है, मनुष्याङ्गनाओं की तो बात ही क्या है ? अन्य स्तोत्रों में भी इस प्रकार का भाव पाया जाता है-

'कुरङ्गाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेम तरलम्' (कर्पूरस्तव) ॥२८॥

पुनः द्वितीय बीज की उपासना का फल बतलाते हैं—

ये बन्धूकस्तबकसुषमाऽध्यापनैकप्रवीणं
प्रोद्यद्बालारुणशतनिभं कामराजार्कसेव्यम् ॥
बीजं स्वान्ते जननि ! सततं चिन्तयन्ते नरास्ते
कामाकारा रतिमपि तनुच्छायया मोहयन्ते ॥२९॥

हे माता ! जो व्यक्ति बन्धूक पुष्पों के गुच्छे की शोभा को भी शिक्षा देने में प्रवीण अर्थात् उससे भी अधिक अरुणिम, उदय होते हुए सैकडों सूर्यों की आभा के समान कामदेव अथवा भगवान् कामेश्वर के द्वारा एक मात्र सेव्य (निरन्तर सेवा किया जाता हुआ) बाला त्रिपुर सुन्दरी के मन्त्रराज गत मध्यम बीज का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं (उक्त बीज का जपाद्यनुष्ठान करते रहते हैं,) ऐसे व्यक्तियों का शरीर, कामदेव की मूर्ति के समान सुन्दर और वरेण्य हो जाता है, अतः अपने शरीर की कान्ति मात्र से वे रति को भी मोहित कर लेते हैं।

भाव यह है कि जो कामराज बीज की उपासना करते हैं, वे कामदेव सदृश हो जाते हैं, और उनके शरीर की कान्ति मात्र से रति के समान सभी स्त्रियाँ मोहित हो जाती हैं; ऐसे व्यक्ति यदि किसी अन्य स्व-

र्गाङ्गना की इच्छा करें तो उसकी प्राप्ति में भी किसी प्रकार के सन्देह का स्थान हो नहीं है।

कामाकारा शब्द का प्रयोग एक विशेषार्थ को भी ध्वनित करता है। आगम शास्त्रों में काम भगवान् शङ्कर को माना गया है—

कामरूपो ह्यहं देवि ! ह्यनङ्गो रूपवर्जितः।
क्षोभयामि प्रजाः सर्वाः नित्यं वै क्लेदयामि च ॥

पुराणों में कामदेव को भस्म करने के कारण भगवान् स्मरारि काम का नष्ट करने वाले प्रसिद्ध ही हैं, अतः साधक का कामाकार=शिवाकार प्राप्त हो जाने पर भी रति द्वारा प्रीति किया जाना विरुद्ध धर्मलक्षणा की भी विलक्षणता को प्रकट करता है ॥२९॥

मध्यम बीज द्वारा साम्राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति बतलाते हैं—

स्फूर्जच्छोभे तरुणनलिनीप्राणनाथांशुजालै-
श्शोणे अंघ्री त्रिदशतरुणी भालसिन्दूरपूरैः ॥
ये ध्यायन्ति स्मरनृपनुते ! मानसे सेवते तान्
कान्ता तुल्यासकलभुवनाऽऽभोगसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥३०॥

हे माता ! कमलिनी को पूर्ण विकसित करने वाले (सूर्य) की किरणों के समूह के समान ज्योतिर्मय आपके ऐसे रक्तिम चरण-कमलों को, जो देवाङ्गनाओं द्वारा निरन्तर प्रणिपात करते रहने से उनके भाल में लगे हुए सिन्दूर के पूर (समूह) से और भी अत्यधिक अरुणिम हो गये हैं; ऐसे चरण-कमलों का जो भी व्यक्ति मन में ध्यान करते हैं, (ऐसे लोगों के लिये) हे कामराज द्वारा अभिवन्दित माता ! समस्त संसार के ऐश्वर्ययुक्त जो साम्राज्य लक्ष्मी है वह भी कामिनी की भाँति उनकी मन से सेवा करती है।

भाव यह है कि जो माता के चरण-कमलों की आराधना करता है, उसे समस्त सिद्धियाँ अनायास प्राप्त हो जाती हैं, अर्थात् लक्ष्मी स्वयं उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है, ऐसा प्रभाव आपके चरण-कमलों के ध्यान का है। पद्य में सूर्य की शोभा से तात्पर्य त्रिपुराम्बा के कामराज बीज के ध्यान आदि के संकेतित फल का, है ॥३०॥

पुनः कामराज बीज के महत्त्व का ख्यापन करते हैं—

ये काश्मीराधिगतजनुषां कर्दमैःकुङ्कुमाना-
मालिप्ताङ्गीं दहरकुहरे सन्ततं त्वां स्मरन्ति ॥
लावण्याम्भोनिधिभवसुधापिण्डवर्णाभिरामा
यान्ति स्वान्तात् क्वचिदपि न ते जातु विद्याधरीणाम् ॥३१॥

हे माता ! जो काश्मीरी कुंकुम से अभिलिप्त आपकी मूर्ति को अपने हृदय रूपी आकाश में निरन्तर स्मरण करते रहते हैं, वे लावण्य के समुद्र से उत्पन्न हुए अमृत पिण्ड के समान सुन्दर कान्ति वाले साधक कभी भी विद्याधरियों के हृदय से अलग नहीं होते ।

भाव यह है कि जो साधक भगवती जगदम्बा के मञ्जुल स्वरूप का नित्य स्मरण करते रहते हैं, ऐसे लोगों पर जब विद्याधरियाँ ही निरन्तर आकृष्ट हुई रहती हैं तब मानवी स्त्रियों का तो कहना ही क्या ? विद्याधरी से तात्पर्य अष्ट वाग्देवताओं से है; अतः ऐसे साधक पर वाग्देवताओं की अत्यन्त प्रीति रहती है यह बात सर्वथा समुचित ही है। यहाँ भी काश्मीर-कर्दम से तात्पर्य वश्य सिद्धि से है । विद्याधरियों से वाग्देवताओं के रूप में जहाँ मुक्तिप्रदता का भाव है, वहीं उत्तम भोगों को प्राप्त कराने की बात भी स्पष्ट ही है ।।३१।।

वश्य सिद्धि के लिये बालाम्बा के द्वितीय बीज का पुनः माहात्म्य निरूपित करते हैं—

चञ्चन्तीनां सुरुचिरतनू हेमचम्पाकलीनां
सत्कान्तीनां मदविदलने चातुरीधारिणीनाम् ॥
कान्तीनां ते जननि ! सततं चिन्तनात्स्वात्मपद्मे
मर्त्यास्ते स्युर्हृदयलिखिता नागरामाजनानाम् ।।३२।।

हे जननि ! जो अपने हृदय कमल में सोनचम्पा (सोनजुही) की चमकती हुई कलियों की आभा के गर्व को भी नष्ट करने में चतुर आपकी मंञ्जुल कान्तियों का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं, वे मनुष्य नाग-कामनियों के हृदयों में भी सदैव लिखे से रहते हैं ।

भाव यह है कि भगवती के दिव्य-विग्रह का निरन्तर स्मरण करने वाले व्यक्ति नागलोक की रमणियों को भी अनायास आकृष्ट करते हैं। नागलोक की स्त्रियों का सौन्दर्य पुराण प्रतिपादित है ।

२९ वें पद्य में रति, ३० वें में लक्ष्मी, ३१ वें में विद्याधरी सुन्दरियों, एवं प्रस्तुत पद्य में नागरमणियों के आकर्षण का निरूपण किया गया है। क्रमशः स्वर्ग, नाग एवं मर्त्य लोक तक का प्रभाव (त्रैलोक्य में) साधक का व्याप्त हो जाता है। कान्तीनां से तात्पर्य आवरण देवताओं के क्रम-पूजन विषयक संकेत से है ।।३२।।

भगवती के ध्यान मात्र से देवताओं के उद्विग्न होने का वर्णन करते हैं—

तप्तस्वर्णद्युतिकरशतोल्लासदीक्षागुरूणा-
मङ्गानां ते जननि ! सततं रोचिषां मण्डलानाम् ॥
स्वान्ते शान्तिप्रणयिनि मुहुः पूरुषैर्ध्यानमग्नै-
रुत्सार्येत स्मरहरसखो विस्मयः कस्तदाऽत्र ? ॥३३॥

हे माता ! आपके उस दिव्य प्रभा-मण्डल को, जो तप्त स्वर्ण (तपाये हुए सोने) की सैकडों किरणों को प्रभापूर्ण करने में दीक्षा-गुरु के समान है, अर्थात् स्वर्ण को भी जिसके कारण ही सुवर्णता प्राप्त है, ऐसे दिव्य ज्योति से परिपूर्ण भास्वर आपके प्रभामण्डल को, शान्तचित्त से ध्यानमग्न होकर बार-बार जो अपने अन्तःकरण में स्मरण करते रहते हैं, ऐसे व्यक्ति यदि भगवान् श्रीशङ्कर के मित्र और देवताओं के कोषाध्यक्ष श्रीकुबेर को विचलित करते हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? अर्थात् यह तो बहुत ही साधारण बात है ।

भाव यह है कि श्रीजगदम्बा की जो आराधना करते हैं, ऐसे भक्त लोगों को संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । क्योंकि इन्द्रोपेन्द्रादि समस्त देवगण भगवती के वरदान से ही सामर्थ्यशाली बने हुए हैं जब कोई भक्त उपासना करता है तो ये देवगण इस हेतु से घबरा उठते हैं कि यह साधक हमारे समकक्ष, हमारा स्थानीय अथवा हमसे बढ़कर सामर्थ्यवाला न बन जाय और इसी ईर्ष्याभाव से प्रेरित होकर वे साधना में निरन्तर विघ्न-बाधाएं डालते रहते हैं; अतः पद्य का यह आशय है कि ऐसे भक्तों के कारण भगवान् शंकर के मित्र जैसे उच्च पद पर अधिष्ठित कुबेरजी भी यदि घबरा उठें तो इसमें कोई बड़ी बात नहीं है, यह ऐसे देवताओं के लिये स्वभाविक है । भगवती के ध्यान का फल मनुष्य को देवताओं से भी उच्च आसन पर पहुँचा देता है, यही भावार्थ है । इस पद्य में यन्त्रोद्धार भी ध्वनित है ॥३३॥

भगवती के चरण-कमलों के स्मरण करने से सब प्रकार की दरिद्रता नष्ट हो जाती है, इस भाव को बतलाते हुए कहते हैं—

सेवायातत्रिदिवनगरी नागरी कामिनीनां
सीमन्तेभ्यो विगलदमलैर्हेममन्दारपुष्पैः ॥
चञ्चच्चामीकरकरशतैर्मञ्जुले पादपद्मे
दारिद्र्याणां हरणनिपुणे तेऽम्ब ! नित्यं स्मरामि ॥३४॥

हे माता ! मैं आपके उन दिव्य चरण-कमलों का सर्वदा स्मरण

करता हूँ, जो उत्तम कान्तिमान् चमकते हुए स्वर्ण की सैकड़ों किरणों के समूह से भी अधिक शोभामय हैं, और जो सेवा कार्य के लिये आई हुई देवाङ्गनाओं के सीमान्त प्रदेश से गिरे हुए स्वर्ण की आभा के समान कल्पवृक्ष के कुसुमों से सर्वदा सुशोभित रहते हैं, तथा जिनके स्मरण मात्र से दरिद्रता के समूह तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

भाव यह है कि श्री भगवती देवियों की अधिष्ठात्री हैं, अत: समस्त देवियाँ जब उनकी सेवा में उपस्थित होती हैं, तो उनके मस्तकों पर लगे हुए कल्पवृक्षों के सुनहरे पुष्प प्रणाम करते समय भगवती के चरण-कमलों पर गिर जाते हैं, उस समय जगदम्बा के पद-पद्मों की छवि बहुत ही सुन्दर हो जाती है। श्रीमान् धर्माचार्य ने भी कहा है—

आनन्दसुन्दरपुरन्दरमुक्तमाल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु-
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकाया: ॥

देवताओं के प्रणिपात करने से विविध देवताओं के पद-पद्मों की विलक्षण छवि के सम्बन्ध में विभिन्न पद्य उपलब्ध होते हैं। सूर्यार्यास्तव में कवि का वर्णन है—

यस्योदयास्तसमये सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलोऽपि।
कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्र: स जयति धाम्नां निधि: सूर्य: ॥

इस प्रकार के बहुत से भावात्मक पद्य उपलब्ध होते हैं। दारिद्र्य-से तात्पर्य दैहिक, दैविक और भौतिक समस्त पाप-तापों के निरसन से है।

भगवती श्रीजगदम्बा के वे चरण-कमल ही दरिद्रता का हरण करने में निपुण होने से उन्हीं के नित्य-स्मरण करते रहने की भावमयी प्रेरणा भी उक्त पद्य से ध्वनित होती है ॥३४॥

कामराजबीज की पुन: फलस्तुति बतलाते हैं—

मन्दाराणां शिशिरमधुरैर्वीज्यमानां मरुद्भि-
स्सिन्दूराभां दधति हृदि ये कामराजैकसेव्याम् ॥
काम्यास्ते स्यु: कनककदलीकाण्डमन्दादराणां
वन्दारूणां सकलसुमनस्सुन्दरीणां वराणाम् ॥३५॥

हे माता! कामराज (कामदेव अथवा भगवान् शंकर) के द्वारा एक

मात्र सेवनीय सिन्दूर के समान शोभाशालिनी आपकी अरुणिम मूर्ति को जिसेकि कल्पवृक्षों से निकली हुई शीतल मन्द समीर मानों चँवर डुला रही हो अथवा मरुद्गण सुगन्धित वायु से निरन्तर सेवा कर रहे हों, ऐसी मधुर मूर्ति का जो साधक अपने हृदय में चिन्तन करते रहते हैं; वे भाग्यशाली साधक स्वर्ण से निर्मित केले के काण्ड (जड़) को भी तिरस्कृत करने वाली (सुपुष्ट जंघाओं वाली) स्वर्गलोक की श्रेष्ठ सुन्दरियों के (जो नम्र-भाव से सेवा में तत्पर बनी हुई हों) ऐसी देवाङ्गनाओं के सहज ही प्रेमपात्र बन जाते हैं।

भाव यह है कि कामराज बीज की उपासना से वश्य सिद्धि होती है और योषिज्जनों के हृदय का आकर्षण होता है। श्री वामकेश्वर तन्त्र में लिखा है—

रागिणां साधको देवि ! बाधको मदनाधिपः ॥
तद्दृष्टिपथगानारी सुरी वा यदिवाऽसुरी ॥३८॥
विद्याधरी किन्नरी वा यक्षनागाङ्गनाऽथवा ॥
प्रचण्डतरभूपालकन्यकाः सिद्धकन्यकाः ॥३९॥
ज्वलन्मण्डलदुष्प्रेक्ष्यमदनोत्तप्तमानसाः ॥
क्लिन्नाः प्रचलिताङ्ग्यस्तुविमूढ़ा मदविह्वलाः ॥४०॥
निवेदितात्मसर्वस्वा जायन्ते वशगाः प्रिये ! (चतुर्थपटल)

कामकला का चिन्तन मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त किया जाता है। आगमिक योग-शास्त्र के अनुसार यही कुण्डलिनी रूपा मूल शक्ति है, आरोहण और अवरोहण दोनों ही क्रमों में 'शरीरानङ्गपर्यन्तमेकैवमुभयात्मिका' इसे माना गया है, अतः इसकी उपासना वाञ्छित फलदायिनी है। 'कामराजैकसेव्यां' से तात्पर्य है कि श्री भगवती की ही उपासना भगवान् शङ्कर अथवा सभी देवगण करते हैं। जैसाकि—

एतामेव पुराराध्य विद्यां त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥
त्रैलोक्य मोहनं रूपमकार्षीद् भगवान् हरिः ॥६७॥
कामदेवोऽपि देवेशि ! महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥
समाराध्याऽभवल्लोके सर्वसौभाग्यसुन्दरः ॥६८॥
मयाऽप्येतद् व्रतस्थेन क्रियतेऽद्यापि सुव्रते ॥
जपस्त्रिसन्ध्यमेतस्यास्तदेतत् पदसिद्धये ॥६९॥
(नित्याषोडशिकार्णव चतुर्थ पटल)

प्रभृति प्रमाणों से स्पष्ट ही है। काम को प्रणव अथवा श्रुतिमुख भी कहा गया है।

मरुद्गणों (देव-विशेष) द्वारा कल्पवृक्षों की सुवासित वायु का उल्लेख होने से प्रकृतश्लोक में मानसोपचार के अन्तर्गत धूप निवेदन करने का भाव भी व्यञ्जित होता है ॥३५॥

वश्य-सिद्धि के लिये अब तार्तीय बीज के जप का फल निरूपित करते हैं—

मातर्नित्यं प्रलयदहनज्वालिकामालिकानां
भासां पुञ्जैरतुलसुषमां स्निग्धदीपाऽभिरामाम् ॥
स्तव्यां भव्यां ललितललितं वन्दिवृन्दारकाणां
ये ध्यायन्ति त्रिभुवनवशीकारदक्षा नरास्ते ॥३६॥

हे माता! प्रलयकाल की अग्नि की ज्वालाओं की मालाओं के समूह की लपटों की कान्ति से भी अधिक पुञ्जीभूत शोभा के समान और स्निग्ध दीपक के समान, सुन्दरताओं से भी सुन्दरतम अतः स्तवनीय आपकी उस भव्य मूर्ति का, जिसके कि समक्ष सभी देवगण प्रणाम की मुद्रा में खड़े रहते हैं, जो मनुष्य ध्यान करते हैं, वे तीनों लोकों को अपने अधिकार में कर सकने की चतुरता को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं।

भाव यह है कि शक्तिबीज अग्नितत्त्वात्मक है, अतः इस बीज की उपासना करने से तेज की वृद्धि होना स्वभाविक है, अतः ऐसे साधक के समक्ष तीनों लोकों में कौन ठहर सकता है? देशिकेन्द्र श्रीदुर्वासा प्रणीत श्रीशक्ति महिम्नः स्तोत्र में भी इसी भाव को बतलाया गया है—

यत्ते देवि! तृतीयबीजमनलज्वालावलीसन्निभं
सर्वाधारतुरीयशक्तिपरमब्रह्माभिधाशब्दितम् ।
मूर्धन्यान्तविसर्गभूषितमहौकारात्मकं तत्परं
भ्राजद्रूपमनन्यतुल्यमभितः स्वान्ते मम द्योतताम् ॥

इससे पूर्व के ३५ वें श्लोक में मानसोपचार विधि के अन्तर्गत धूप का उल्लेख किया गया था, प्रकृत पद्य में दीप निवेदन करने का भाव भी व्यञ्जित होता है ॥३६॥

अब पुनः तृतीय बीज की अधिष्ठात्री भगवती का वर्णन करते हैं—

प्रावृड्धाराधरतनुरुचां मोषणे पेशलानां
भासां हासे विहितरतिभिर्भाभिराभासमानाम् ॥

ये ध्यायन्ति प्रतिदिनमभिस्वान्तपद्मं नरास्ते
विद्योतन्ते जगति सकले सर्वदा निःसपत्नाः ।।३७।।

हे माता ! वर्षाकालीन मेघ की कान्तियों को चुरा लेने में चतुर जो कान्तियाँ हैं; उन कान्तियों के समूह को भी अपने हास से तिरस्कृत करने वाली ऐसी अनन्त शोभाओं से आभासित होने वाली आपकी दिव्य मूर्ति को जो मनुष्य प्रतिदिन अपने हृदय-कमल में अधिष्ठित अनुभव करते रहते हैं, ऐसे व्यक्ति आपके ध्यान के प्रभाव से समस्त संसार में शत्रु रहित (निष्कण्टक) होकर सदैव प्रभावशाली बने रहते हैं।

भाव यह है कि शक्तिबीज के प्रभाव से जीव और ब्रह्मैक्य का फल मिलता है, अतः शत्रुरहित होने का तात्पर्य यह है कि ऐसे साधक को कामक्रोधादि शत्रु साधना से विचलित करने में असमर्थ हो जाते हैं, अतः वह परम पद का अधिकारी सहज बन जाता है। लौकिक जीवन में भी शत्रुरहित होकर वह सुखी बना रहता है।

शक्ति बीज का चिन्तन मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त किया जाता है। सृष्टि-क्रम में जब अनुत्तर पद का श्रयण होता है तो ज्वलदग्नि के समान रूप का स्मरण किया जाता है, जैसा कि ३६ वें पद्य में वर्णित किया गया है । संहारक्रम में अनुत्तर से स्वाधिष्ठान पर्यन्त वर्षाकालीन मेघ जैसे स्वरूप का चिन्तन किया जाता है। शक्तिबीज का स्वरूप अग्नि है, अतः दोनों क्रमों में इसका निर्धूम या सधूम चिन्तन समुचित हो है।

अन्य भाव यह भी है कि आभिचारिक सिद्धियों के लिये तमोगुण-लक्षणा श्रीमहाकाली की उपासना की जाती है, जिनका स्वरूप 'नीलाञ्जननिभा' है, अतः ऐसी महाशक्ति के उपासक अपने तेजः पुञ्ज से समस्त शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ हो जाते हैं। अन्धकार से तात्पर्य अज्ञान से है, अतः शक्तिबीज की उपासना करने वालों का अज्ञान भी स्वतः नष्ट हो जाता है, यह फलितार्थ है। श्रीविद्या और श्रीमहाकाली ये दोनों ही विग्रह तत्त्वतः एक ही हैं, अतः श्रीविद्या के उपासकों पर महा-महिमामयी श्रीमहाकाली की भी पूर्ण कृपा बनी रहती है, यह भाव भी इस पद्य में ध्वनित है ।।३७।।

भगवती के चिन्तन मात्र से साम्राज्यसिद्धि का फल बतलाते हैं—

मातर्येत्वां जितकुवलयोद्द्योतमन्दैरमन्दै-
र्भासां वृन्दैर्ललितमधुरं धारयन्तीं शरीरम् ।।

चेतः पद्मे प्रतिदिनमतिश्रद्धया चिन्तयन्ते
प्रास्यं राज्यं हतरिपुकुलं ते नराः प्राप्नुवन्ति ।।३८।।

हे माता ! जो आपको कुवलय पुष्प की छवि या कान्ति के समान, अथवा कुवलय पुष्पों की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाली, परम उज्ज्वल आपकी मञ्जुल मूर्ति को अत्यन्त श्रद्धा से प्रतिदिन अपने हृदय-कमल में विराजित हुई विचारते रहते हैं, ऐसे मनुष्य विनष्टशत्रुसमूहवाला (निष्कण्टक) समृद्ध राज्य प्राप्त करते हैं ।

इस पद्य का दूसरा भाव यह है कि 'कुवलयोद्योत' अर्थात् समस्त पृथ्वी भर के महाभूतों की प्राणशक्ति के समूह को एकत्र जीत लिया है, ऐसी कान्ति धारण करने वाली भगवती के चिन्तन मात्र से सभी प्रकार के सुखों का प्राप्त होना स्वाभाविक ही है ।

रिपुकुल से तात्पर्य आध्यात्मिक मार्ग में बाधक कामक्रोधादि षड् रिपुओं से है । प्राज्य राज्य से आशय आध्यात्मिक चरमोन्नति से है । पूर्व पद्य में लौकिक सिद्धियों के क्रम में शत्रुनाश और इस पद्य में सर्वविध समृद्धि और साम्राज्यसिद्धि का फल निरूपित किया गया है । आध्यात्मिक चरमोन्नति के साथ शक्तिबीज की उपासना से परम ज्ञान भी प्राप्त होता है । श्रीमान् धर्माचार्य ने भी—

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टं प्रभावंबुधै-
स्तार्तीयं तदहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दुप्रभम् ।
अस्त्वौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये
गौःशब्दोगिरिवर्तते सनियतं योगं विनासिद्धिदः ।।

कह कर इसी भाव की पुष्टि की है ।।३८।।

अब पुनः व्यस्त समस्त रूप से बीज मन्त्र के न्यास का निरूपण करते हैं—

वामाक्षीं यो जननि ! सकलां निष्कलां चित्कलां त्वां
बीजात्मानं सकलजगतः कामराजैकसेव्याम् ।।
ज्ञात्वा सम्यङ् निजगुरुमुखात् सर्वदा सेवते स
त्रैलोक्यस्य प्रभवति समुत्पादने त्वत्स्वरूपः ।।३९।।

हे माता ! भगवान् कामेश्वर के द्वारा एक मात्र सेवित अथवा समस्त संसार की बढ़ी हुई अनन्तकामनाओं की परिपूर्ति के लिये एक मात्र

आश्रयणीय स्थान के रूप में प्रसिद्ध, आपके मूल मन्त्र के बीजों को चाहे सकल रूप से, चाहे निष्कल रूप से और चाहे चित्कल रूप से भली-भाँति अपने श्री गुरुमुख से जानकर एवं बीजों में आत्मभाव का अनुभव करते हुए सदा उपासना में निरत रहता है, ऐसा साधक आपका ही स्वरूप बन जाने के कारण तीनों लोकों को उत्पन्न कर सकने जैसी सामर्थ्य वाला बन जाता है।

भाव यह है कि भगवती के बीजमन्त्र को सकल (कलाओं सहित) निष्कल (कलाओं से रहित) अथवा चित्कला (आनन्द कलाओं से) परिपूर्ण रूप में समझ कर जो उनकी उपासना करता है, उसका अचिन्त्य प्रभाव होता है। कलाओं से तात्पर्य स्वर मात्राओं तथा ईकाराक्षर से गर्भित बीज-मन्त्रों से है। कल शब्द से ककार और लकार का भी बोध होता है। उन बीज-मन्त्रों को जो ककार या लकार से युक्त हों अथवा रहित हों, समान रूप से फलदायक बतलाया गया है, जैसा कि भक्तप्रवर श्रीतुलसी-दास जी ने भी कहा है—

भाव कुभाव अनख आलस हू। नाम जपत मंगल दिस दस हू॥

'कामराजैकसेव्यां' पद से प्रकृत पद्य में काम कला का ग्रहण किया गया है। काम ही सम्मिश्रित मूल बिन्दु है। विसर्ग शोण और सित विन्दुद्वय हैं, एवं हार्द्ध कला उसी का अभिवृद्धि रूप है। इसी को कामकला शास्त्रों में कहा गया है—

'ऊर्ध्वं कामाख्यो विन्दुरेकस्तदधोऽग्नीषोमात्मकबिन्दुद्वितयरूपोन्य-स्तदधो हकारार्धरूपः कलाख्यस्तृतीयस्तदिदं प्रत्याहारन्यायेन कामकलेत्यु-च्यते' (सेतुबन्ध)। इसी भाव को सौन्दर्यलहरी में भी व्यक्त किया गया है-

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ! ते मन्मथकलाम्॥

काम ही मूल शक्ति है, अतः उसका आराधन ही ब्रह्मविद्या की उपासना है। कहा है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्॥

बामाक्षीं से तात्पर्य वाग्वादिनीबीज से है। वाग्वादिनीबीज, काम-राजबीज और शक्तिबीज यह सामान्य क्रम है। व्यस्त क्रम से कामराज-बीज, वाग्वीज और शक्तिबीज अथवा कामबीज, शक्तिबीज और सारस्वत-

बीज, इसी प्रकार तीनों बीजों के निर्व्यञ्जन, सव्यञ्जन अनन्त भेद (निर्मात्रक, समात्रक) हो जाते हैं, इस प्रकार के भेदोपभेदों को श्री गुरुमुख से जानकर जो लोग भगवती की उपासना करते हैं उन्हें अनन्त सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं—

'एकैकं तव देवि ! बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा प्रथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफलीकरोति तरसा तं तं समस्तं नृणाम् ॥

इस प्रकार श्रीमान् धर्माचार्य ने भी प्रतिपादित किया है। नवीन त्रैलोक्य निर्माण के सम्बन्ध में महर्षि विश्वामित्र द्वारा नूतन सृष्टि-निर्माण करने आदि के उदाहरण प्रसिद्ध ही हैं ॥३९॥

अब पुनः वाग्वादिनी-बीज रूप में मातृका शक्ति की महिमा बतलाते है–

वाणीं राकातुहिनकिरणोल्लासरम्यस्वरूपां
चञ्चन्मात्रां वसुविधकलाऽलङ्कृतां ब्रह्मरूपाम् ॥
अक्षोल्लासाऽवनलयसमुल्लासिनीमक्षरां यः
सम्यग् ज्ञात्वा भजति निखिलां स त्रिलोकीं बिभर्ति ॥४०॥

हे माता ! शरत् पूर्णिमा के उल्लसित चन्द्रमा के समान आपके अष्ट कलाओं (मातृकाओं) सहित ब्रह्मरूपा अर्थात् वाग्देवी के रूप में, जो पालन और प्रलय रूपी अक्षय गुटिकाओं की अक्षर-मालिका (नहीं नष्ट होने वाली) को सदैव चलाती रहती हैं, अर्थात् सृष्टिलय की अधिष्ठात्री होने पर भी स्वयं अक्षरा अथवा अक्षरब्रह्मरूपा हैं, इस प्रकार की सामर्थ्य शालिनी आपको जो भली-भाँति भजता है, वह त्रिलोकी का स्वामो होता है।

त्रैलोक्य के अधिष्ठाता को सृष्टि-लय के आधार का पूर्ण परिज्ञान आवश्यक है। 'देवो भूत्वा देवं यजेत' के अनुसार तादात्म्य-भाव प्राप्त हो जाने पर मनुष्य त्रैलोक्य का स्वामी बन जाता है।

पद्य में वसुविध कला से यन्त्रोद्धार का निर्देश किया गया है और अष्टदल की आवरण देवता संकेतित हैं।

अन्य भाव इस पद्य में वर्णमातृकास्वरूप का भी निर्वचन है। वसु-

विध कला अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, तक मूल स्वर मातृकाऐं हैं जिनके बिना वर्णोच्चार नहीं होता। चंचन्मात्रा से अष्ट महामात्राओं आ, ई, ऊ, ऐ, ओ, औ, अं, अः, का संकेत है। अवनाल्लय शब्द से पूरी वर्णमातृका अ से लेकर ल पर्यन्त (आगमों में लं क्षं पर्यायवाची हैं, अतः अ से क्ष तक) तथा स्फोट नाद रूप अक्षर-ब्रह्मप्रणवरूपा वाग्देवी की उपासना के फल से त्रैलोक्य स्वामित्व की सिद्धि होना सरल ही है। वशिन्यादि अष्ट मातृकाऐं प्रसिद्ध ही हैं। अक्ष से तात्पर्य ३६ तत्वों के (शिव से पृथ्वी पर्यन्त) सभी तत्वों के द्वारा सृष्टि, स्थिति और संहार पर्यन्त तीनों स्थितियों को जान लेना ही साधना की चरम भूमि है।

आगम-ग्रन्थों में मातृकाओं के अनेक भेद वर्णित हैं, जिनमें मुख्यतः १. केवल २. विन्दु संयुक्त ३. विसर्गयुक्त और ४. उभयात्मक चार भेद प्रसिद्ध हैं—

चतुर्धा मातृका प्रोक्ता केवला बिन्दुसंयुता।
सविसर्गा सोभया च रहस्यं श्रृणु कथ्यते॥
विद्याकरी केवला च सोभया वृद्धिकारिणी।
सविसर्गा पुत्रदा च सबिन्दुर्वित्तदायिनी॥ (तन्त्रसार)।

मातृका ही समस्त वाङ्मय का अधिष्ठान है। स्वच्छन्द तन्त्र में कहा गया है 'न विद्या मातृका परा' अर्थात् मातृका से परे कोई विद्या नहीं है। इसी महाविद्या को अ से क्ष पर्यन्त होने के कारण अक्ष कहा जाता है और इसी वर्णमाला (अक्षमाला) का निरन्तर आवर्तन सृष्टि स्थिति और संहार के रूप में भगवान् शङ्कर या बालाम्बा द्वारा किया जाता है। परात्रिशिका में लिखा है-

कथयामि वरारोहे यन्मया जप्यते सदा।
अकारादि क्षकारान्ता मातृका वर्णरुपिणी॥
चतुर्दशस्वरोपेता बिन्दुत्रयविभूषिता।
कलामण्डलमास्थाय शक्तिरूपं महेश्वरि॥
ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्तु शक्तिरूपतः।
पञ्चाशद्वर्णभेदेन शब्दाख्यं वस्तु सुव्रते॥
अकारः प्रथमं देवि! क्षकारोन्त्यस्ततः स्मृतः।
अक्षमालेति विख्याता मातृका वर्णरूपिणी॥

यही मातृका परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूपों में तथा ध्वनि

वर्ण, पद, और वाक्य चारों रूपों से समस्त संसार में व्याप्त अनादि और अनन्त तत्त्व हैं। इसी तत्त्व की उपासना से सकलार्थ सिद्धि का वर्णन इस पद्य में किया गया है ॥४०॥

पूर्व पद्यों में वाग्भव और कामबीज का निरूपण करते हुए पुनः शक्ति-बीज का वर्णन करते हैं—

शक्ति ब्रह्माद्यखिलविविधैर्देववृन्दैरुपास्यां
सौराकारां हुतवहसमुल्लाससौन्दर्यरम्याम् ॥
आदिक्षान्तप्रलयविलसद्धामरूपां भजन्ते
ब्रह्मारामा भजनचतुराः केचिदेवाऽत्रधन्याः ॥४१॥

हे माता! आपकी उस अनन्त महिमामयी महाशक्ति को, अथवा आपके महनीय शक्तिबीज को, जिसकी कि उपासना ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्र प्रभृति समस्त विविध देवगण करते रहते हैं, और जो सूर्य के समान प्रकाशमान, समुज्ज्वल प्रभा से दीप्तिमान है, अथवा सौराकार है, तथा अग्नि की प्रज्ज्वलित ज्वालामालाओं की एकत्र कान्ति के समान सुन्दर है, तथा अ से लेकर क्ष पर्यन्त सभी तत्वों को निलीन करने वाला अथवा सभी आदि-क्षान्त तत्त्वों का प्रकाशक या अधिष्ठान के समान स्थित है, इस प्रकार के अतुलित धाम स्वरूपा आपको अथवा आपके तार्तीय बीज को ब्रह्मरूपी बगीचे में विहार करने वाले अथवा सर्वदा ब्रह्मानन्द में निमग्न रहने वाले कुछ धन्य लोग ही आपके उस निर्मल स्वरूप अथवा तृतीय बीज को भजन में चतुर बनकर ऐसी उपासना में निरत रहते हैं, अथवा आपके शक्तिबीज को निरन्तर भजते रहते है।

भाव यह है कि कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की अधिष्ठात्री महाशक्ति ही हैं। 'चितिः स्वतन्त्रा' आदि वचनों से वह पूर्ण स्वतन्त्र और सर्वत्र व्याप्त हैं। परमेश्वर भी उन्हीं के कारण शक्तिमान कहे जाते हैं। अम्बास्तव में श्रीमान् धर्माचार्य कहते हैं—

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनाऽसि पुरुषे पवने बलं त्वम् ।
त्वं स्वादुताऽसि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निस्सारमेतदखिलं त्वदृते यदि स्यात् ॥

अर्थात् 'चन्द्र में चन्द्रिका, सूर्य में प्रकाश, पुरुष में चेतना, वायु में

वेग, जल में स्वादुता और अग्नि में ऊष्मा आप ही हैं; यदि संसार में आप न हों तो यह संसार ही सार रहित हो जाय। इस प्रकार की महाशक्ति की उपासना विभिन्न देवताओं द्वारा किया जाना स्वाभाविक ही है।

सौराकारां से तार्तीय बीज का सविसर्ग सबिन्दु तथा सविसर्गबिन्दु का उद्धार स्पष्ट ही है।

अ से लेकर क्ष पर्यन्त मातृकोत्थित ३६ तत्त्व इस प्रकार हैं—
१. अ-शिव, २. क-शक्ति, ३. ख-सदाशिव, ४. ग-ईश्वर, ५. घ-शुद्धविद्या, ६. ङ-माया, ७. च-कला, ८. छ-अविद्या, ९. ज-राग, १० झ-काल, ११. ञ-नियति, १२. ट-पुरुष, १३. ठ-प्रकृति, १४. ड-अहङ्कार, १५. ढ़-बुद्धि, १६. ण-मन, १७. त-श्रोत्र, १८. थ-त्वक्, १९. द-चक्षुः, २०. ध-जिह्वा, २१. न-घ्राण, २२. प-वाक् २३. फ-पाणि, २४. ब-पाद, २५. भ-पायु, २६. म-उपस्थ, २७. य-शब्द, २८. र-स्पर्श, २९. ल-रूप, ३० व-रस, ३१. श-गन्ध, ३२. ष-आकाश, ३३. स-वायु, ३४. ह-वह्नि, ३५. ल-सलिल, ३६. क्ष-भूमि।

इस प्रकार शिवादि भूम्यन्त तत्त्वसमूह वर्णमातृकाश्रित हैं। ब्रह्म का निर्वचन शब्द और अर्थ के रूप में होता है। शब्द शक्ति ही परा पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप में है। जगदङ्कुर जिस मूल-विन्दु में रहता है, वही शक्ति है, उससे ही नाद उत्पन्न होता है। विन्दु निसर्ग दशा है, और वही 'एकोऽहं बहुस्याम' जैसी आकांक्षा कर विसर्ग का रूप धारण करती है, उसी का विस्तार रेखा, लिपि और क्रमशः वर्ण मातृकादि हैं। शास्त्रों में अकार को शिव स्थानीय मानते हुए अ से ह तक मिला कर जो 'अहं' शब्द निष्पन्न होता है, उसे ही शिवशक्ति सामरस्यात्मक अहन्ता-विमर्श माना गया है। विमर्श ही शक्ति है और प्रकाश ही शिव है, अतः प्रकाश-विमर्श की स्थिति अन्योन्याश्रित है। मातृका-चक्र के अनुसार मूलाधार स्वाधिष्ठान चक्र से सहस्रार पर्यन्त वर्णमय शरीर है, एवं स्वर जो कि व्यञ्जनाश्रित हैं, वाग्देवी के अवयव हैं।

जैसा कि श्रीमान् पृथ्वीधराचार्य ने श्री भुवनेश्वरी स्तोत्र में कहा है—

आद्यो मौलिरथापरो मुखमिई नेत्रे च कर्णावुऊ
नासा वंशपुटे ऋ ॠ तदनुजौ वर्णौ कपोलद्वयम्।
दन्ताश्चो ध्र्वमधस्तथैवयुगलं सन्ध्यक्षराणि क्रमात्

जिह्वामूलमुदग्रबिन्दुरपि च ग्रीवा विसर्गो स्वरः ॥
कादिर्दक्षिणतो भुजस्तदितरो वर्गश्च वामो भुज-
ष्टादिस्तादिरनुक्रमेणचरणौ कुक्षिद्वयं ते पफौ ।
वंशः पृष्ठभवोऽथ नाभिहृदये बादित्रयंधातवो
याद्याः सप्त समीरणश्च सपरः क्षः क्रोध इत्यम्बिके ॥

यह वाग्देवी ही शब्दब्रह्म की पराशक्ति है। यही पराशक्ति आम्नाय-ग्रन्थों में कुण्डलिनी कही जाती हैं, एवं प्रणव की मूल है। जैसा कि कहा गया है—

यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितमुदरे यत्तदोङ्कारपीठम्।
तस्मिन्नन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां
श्यामाकारां सकलजननीं चेतसा चिन्तयामि ॥

यह महाशक्ति ही सब का मूलाधिष्ठान है, और वही वेदों में प्रतिपादित अग्नीषोम है। नेत्रतन्त्र का वचन है—

सा योनिः सर्वभूतानां शक्तीनां चाप्यनेकधा ।
अग्नीषोमात्मिका योनिस्तस्याः सर्वं प्रवर्तते ॥

इस प्रकार मातृकाओं में परावाग्रूपिणी मातृका ही सर्वत्र व्याप्त है, जैसा कि प्रपञ्चसार तन्त्र में कहा गया है—

आदौ तारः प्रकृतिविकृतिप्रोत्थितोऽसौ च मूला-
ऽऽधारादारावलिविरुतिराविश्य सौषुम्नमार्गम् ।
आद्यैः शान्तावधिभिरनुगो मात्रया सप्तभेदैः-
शुद्धो मूर्द्धावधिपरिगतः शाश्वतोऽन्तर्बहिश्च ॥

अर्थात् निश्चल परावाक् रूपिणी प्रणवात्मिका कुण्डलिनी शक्ति ही प्रकृति हैं। पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी आदि सब इसकी विकृतियां हैं। प्रणव उच्चारण से पूर्व पूर्णसंविदात्मक-परप्रणवरूपा महाशक्ति में अवस्थित रहता है, पश्चात् ज्वालाप्रवाह रूप शब्द भेदों को पार करता हुआ अभिव्यक्त होता है। ज्योतिर्लिङ्गाकार चिदग्निरूप यह प्रणव भ्रमर के सदृश गुञ्जन करता हुआ मूलाधार से सुषुम्ना में प्रवेश करता है, और क्रमशः अकारादिवाचकों और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव शक्ति तथा पररूपात्मक सात भेदों से शान्तावधि उपसंहृत हो कर मूर्द्धादेश

अथवा द्वादशान्त में ज्योतिः मात्र रूप में अन्दर और बाहर सर्वत्र शाश्वत रूप में विद्यमान रहता है।

शारदा-तिलक में भी कहा गया है—

सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी वपुः।
शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्निरोधिका॥

इस प्रकार महाशक्तिरूपिणी कुण्डलिनी ही चराचर की प्राणरूपा होने से उसके शक्तिबीज का जो अचिन्त्य प्रभाव इस श्लोक में बतलाया गया है, वह स्वष्ट ही है। महर्षि विश्वामित्र द्वारा नव-सृष्टि निर्माण के उदाहरण प्रत्यक्ष ही हैं॥४१॥

अब पुनः बीजत्रयसमन्वित मूलमन्त्र का उद्धार बतलाते हैं—

एवं वाणीं तदनु मदनं शक्तिबीजं तृतीयं
सैवापास्ति-प्रकरणयुतं देशिकेन्द्रादवाप्य॥
यं यं कामं मनसि कुरुते तं तमाप्नोति सद्यः
स्वात्माऽऽकारां जननि! सततं त्वां नरः सेवमानः॥४२॥

हे माता! इस प्रकार (पूर्वोक्त विधि से) पहले वाणी अर्थात् वाग्बीज, फिर मदन अर्थात् कामबीज और पुनः शक्तिबीज को क्रम से उपासना की विविध विधियों से युक्त श्रीगुरु से प्राप्त कर, जो मनुष्य जिस-जिस वस्तु को प्राप्त करने की अपने मन में कामना करता है, उस-उस वस्तु को वह शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। हे माँ! आप स्वात्मरूप हैं। अतः निरन्तर आपकी सेवा करने से कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती।

भाव यह है कि तीनों बीजों से युक्त भगवती के मन्त्र का लोकोत्तर प्रभाव है, उसके सदृश कोई अन्य मन्त्र नहीं है वही मूलविद्या है, अतः उसकी सर्वदा उपासना करनी चाहिये। पहले वाक् फिर काम और तदनन्तर आत्म-शक्ति (धर्मार्थकाममूलक त्रिवर्ग को वश में करते हुए) का समन्वित साधन करने से चतुर्थ वर्ग मोक्ष की सिद्धि तो अनायास ही हो जाती है। वस्तुतः मोक्ष पूर्णाहन्ताविमर्श ही है। जब तक जीव अविद्या से परतन्त्र रह कर पशु-भाव का अनुभव करता है, तब तक उसे स्वात्म-बोध नहीं होता। पूर्णस्वातन्त्र्य का बोध होना ही मुक्तावस्था है, और यह उचित मार्गदर्शन एवं अभ्यास के बिना नहीं होती। देशिकेन्द्र (श्री गुरुराज) की कृपा और मार्ग-दर्शन से ही निरन्तर अभ्यास करता हुआ

मनुष्य उस दशा को प्राप्त कर सकता है; इसी दृष्टि से ग्राम्नाय-ग्रन्थों में श्रीगुरु का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए यहाँ तक कहा गया है—

'शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन'

अर्थात् अगर किसी कारण भगवान् शङ्कर भी अप्रसन्न हो जायँ तो श्रीगुरुनाथ अपने शिष्य की रक्षा कर लेते हैं, किंतु श्री गुरु के रुष्ट होने पर कोई भी बचाने वाला नहीं है । इसी कारणवश सर्व-प्रथम श्रीगुरु, गुरुपंक्ति और गुरुपादुकाओं का स्मरण-वन्दन किया जाता है, और श्री गुरु ही इष्टदेव स्वरूप भी हैं, अतः इष्टदेव और गुरुदेव में ऐक्य है। त्रिबीजों में वाग्भवबीज से बीजमन्त्र का वाणी से जप करने या सच्छास्त्रों का सतत स्वाध्याय करने, मदनबीज से इन्द्रियों और तज्जन्य एषणाओं अथवा वासनाओं पर विजय प्राप्त करने से आत्मशक्ति का जो विकास होता है, उस विकसित स्वात्मशक्ति को शक्तिबीज के माध्यम से महाशक्ति में तदाकार करने अथवा तादात्म्य-भाव से उपासना करने से श्रीगुरुकृपा के फलस्वरूप पूर्ण स्वातन्त्र्य-विमर्शरूप की अपरोक्षानुभूति होती है, जो साधकों का सर्वस्व अथवा साधना का चरम-फल है। वाणी, मदन और शक्ति पदों से बीजोद्धार स्पष्ट ही है। इन बीजों को ललाट, हृदय और मस्तक में ध्यान करने की आगमिक विधि है। त्रिबीज से त्रिपुरा का बोध होता है, जैसा कि श्रीमान् धर्माचार्य ने कहा है—

लोकानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
त्रैस्लोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्मवर्णास्त्रयः ।
यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तुत्रिवर्गात्मकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥

त्रिपुरा ही नित्य-शक्ति हैं, और 'पुरुषे षोडशकले तामाहुरमृतां कलाम्' वचन के अनुसार अमृतकला-षोड़शी हैं। इनका ललित-विग्रह होने के कारण इन्हें ही ललिता भी कहते है । सर्वोपरि होने के कारण ही इन्हें राजराजेश्वरी कहा जाता है। और अवर्णनीय या बुद्धि से भी परे होने अथवा वर्णसमाम्नाय की अधिष्ठात्री होने के कारण पराभट्टारिका शास्त्रकारों ने कहा है। प्रणवरूप मूल-त्रिकोण में रहने के कारण ही 'प्रणवत्रिकोणनिलया' कहा जाता है, और त्रिकोण का सूक्ष्मतम स्वरूप ही विद्याराज्ञी या बालाम्बा हैं। प्रणव-त्रिकोणादि भी इनके स्थूल-विग्रह ही हैं, क्योंकि उनमें रहती हुई भी ये उनसे परे हैं, अतः इन्हें तुरीय कहा जाता है।

महाकवि गन्धर्वराज पुष्पदन्त ने शैवधाम को भी –

'तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः'

कह कर ध्वनि के परमाणुओं से भी सूक्ष्मतम या समाधिदशा में केवल ज्ञानगम्य ही तुरीयधाम को बतलाया है। वस्तुतः उसका शाब्दिक वर्णन हो ही नहीं सकता। अतः वेद भी नेति नेति कह कर मौन हो जाते हैं। महर्षि मार्कण्डेय ने भी—

'अर्द्धमात्रा स्थिता नित्या याऽनुच्चार्या विशेषतः'

कह कर उसे उच्चारण रूप वाग्व्यापार से अगम्य ही बतलाया है। सकलजननीस्तव में भी-

पुरःपश्चादन्तर्बहिरपरिमेयं परिमितं
परंस्थूलं सूक्ष्मं सकलमकलं गुह्यमगुहम् ।
दवीयो नेदीयः सदसदिति विश्वं भगवति !
सदा पश्यन्त्याज्ञां वहसि भुवनक्षोभजननीम् ।।

कहा गया है। इस प्रकार सर्वव्यापिका एवं सर्वव्याप्ता भगवती की उपासना से सभी कामनाओं की सिद्धि होना स्वाभाविक ही है क्योंकि –

यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्धते नरः ।
रविताक्ष्यॅन्दुकन्दर्पशङ्करानलविष्णुभिः।। (नित्या षोड़शिकार्णव,) (१।३)

के अनुसार साधक का यह अमित प्रभाव हो जाता है। योगशास्त्र के अनुसार कुण्डलिनीरूप से भगवती की उपासना ही ब्रह्मउपासना है, अतः भगवती के मूलमन्त्र को व्यस्त समस्त या मातृकापुटितगर्भित आदि कामना भेद से विविध उपास्तिक्रमों से श्रीगुरुमुख द्वारा प्राप्त कर समुचित लाभ उठाना चाहिये। आम्नाय-ग्रन्थों में—

आदौ बाला विनिर्दिष्टा ततः पञ्चदशी मता ।
ततः श्रीषोड़शीविद्या पराविद्या तदुत्तरम् ।।
ततश्चरणदीक्षास्यात्ततो निर्वाणदीक्षणम् ।
ततः षट्शाम्भवीदीक्षा मेधादीक्षा तदुत्तरम् ।।

प्रभृति विविध मार्गों का निर्देश है, अतः यथासाध्य किसी भी प्रकार से अधिकार प्राप्त कर मूलविद्या की उपासना करनी चाहिये ।।४२।।

अब आगे के पद्यों में जगदम्बा की पादादिकेशान्त स्तुति स्तोत्रकार करते हैं—

लाक्षारागद्विगुणितरुचा रञ्जिते पादपद्मे
ब्रह्मोद्‍बोधध्वनियुतलसन्नूपुराऽलङ्कृते ते ।।
विष्णुब्रह्मादिभिरभिनुते! वाञ्छितार्थं ददाने
मार्तानित्यं हृदयकमले राजतां मामकीने ।।४३।।

हे माता ! लाख की ललाई से भी दुगनी अरुणिम-शोभावाले आपके चरणकमल, जिनमें पहिने हुए नूपुरों की ध्वनि ब्रह्मज्ञान का बोध कराने में हेतु भूत है; विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा जो निरन्तर सुपूजित हैं, वाञ्छित कामनाएँ जिनके स्मरणमात्र से प्राप्त हो जाती हैं, ऐसे आपके (श्रीजगदम्बा) के चरण-सरसीरुह मेरे हृदयकमल में सदैव विराजमान रहें।

विशेष--भगवती का स्वरूप शोणवर्ण है, अतः चरणकमलों की अरुणिमा से ही पादादि-केशान्त वर्णन प्रारम्भ किया गया है। स्तोत्र-वाङ्मय में ऐसा विधान है कि गृहस्थों को पादादि स्तुति करने से लौकिक फलों की सद्यः प्राप्ति होती है, पारलौकिक फलों की प्राप्ति के लिये केशादिपादान्त स्तुति करनी चाहिये, वैसे दोनों ही प्रकार के स्तोत्र भुक्ति-मुक्ति प्रदाता हैं ।।।४३।।

भगवती के ऊरू द्वय (घुटनों) का वर्णन करते हैं—

रम्भाकाण्डच्छविविहसनापेशलप्रज्ञयाढ्या
वास्तामूरू मम हृदि सदा तप्तहेमाभिरामा ।।
यौ ध्यायन्तः सुरपतिवनीलोललीलावतीनां
रम्भादीनामपि नरवराः प्रेमपात्रं भवन्ति ।।४४।।

हे माता ! रम्भा (कदलीवृक्ष) के काण्ड की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले और तपाये हुए(तप्त)सुवर्ण के समान कान्तिवाले आपके ऊरू द्वय, मेरे हृदय में सदैव विराजमान रहें; जिनका ध्यानकरने से चंचल विलासिनी देवाङ्गनाएँ (स्वर्ग-लोक की रम्भा आदि अप्सराएँ) ध्यान करने वाले मनुष्यों के प्रति आकृष्ट होकर प्रेम करने लगती हैं।

भाव यह है कि जगदम्बा के ऊरुद्वय कदलीकाण्ड से भी सुकोमल एवं तप्तस्वर्ण-सदृश हैं, उनके ध्यान करने वाले साधक स्वर्ग की अप्सराओं के भी प्रेमी अनायास ही बन जाते हैं ।।४४।

अब श्री भगवती के नितम्ब-प्रदेश का वर्णन करते हैं—

शिञ्जानानां रुचिरकनकैर्निर्मिता किङ्किणीनां
काञ्चीयत्रोल्लसति परितो हेमसौदामिनीव ।।
तद्बालार्कप्रतिममभितः पीतवासो वसानं
नैतम्बं मे हरतु दुरितं बिम्बमम्ब ! त्वदीयम् ।।४५।।

हे माता ! सुवर्ण की बजती हुई सुन्दर किङ्कणियों से निर्मित काञ्ची करधनी) जो कि सुवर्णा-विद्युल्लता की भांति जिस स्थान के चारों तरफ पहिनी हुई है, वह पीत वर्ण के वसन से युक्त उगते हुए सूर्य-मण्डल की प्रभापुञ्ज के समान सुशोभित ग्रापका नितम्ब-बिम्ब भाग मेरे कष्टों को दूर करे।

भाव यह है कि पीतवर्ण के वस्त्र के ऊपर पहिनी हुई स्वर्ण कांची ग्रतिशय पीतता के कारण बालारुण के प्रभामण्डल के समान नितम्ब-प्रदेश पर सुशोभित है।

तन्त्रान्तरों में जहाँ भगवती को रक्ताम्बरा कहा गया है, वहाँ 'पीतवासो वसानं' शब्द से शङ्का ग्रौर तन्त्रविरुद्धोक्ति का भ्रम हो सकता है, ग्रतः उसकी सङ्गति के लिये रक्ताम्बर पर पीतवर्णा कांची की ग्राभा बालारुण बिम्ब सी होकर लक्षित हो रही है, ग्रतः वसन भी पीत सा लग रहा है, यह संगति करनी चाहिये; क्योंकि कांची भाग मणि-जटित होने से ग्रधिक प्रकाशित है ग्रौर उसकी छवि ने वस्त्र की ग्राभा को न्यून कर दिया है। इस प्रकार छवि शवलता में पीतच्छवि का ही मुख्यत्व है। ग्रथवा बालारुण का वर्ण ही रक्ताधिक पीत शवल होता है, तत्तुल्य वस्त्र या बालारुण की कान्ति को भी जिसने तिरस्कृत कर दिया है (पी लिया है) ऐसा वर्ण है जिसका तत्तुल्य (रक्ताम्बर) वस्त्र धारण करने वाली जगदम्बा का स्वरूप ही यहाँ ग्रभिप्रेत है, जो सर्वथा तन्त्र-संगत है ।।४५।।

श्री भगवती के उदरभाग का वर्णन करते हैं—

ब्रह्माण्डानामयुतमयुतं बुद्बुदाभासतुल्यं
यस्मिन्नन्तर्विलसति सदा यन्महाकाशरूपम् ।।
बाढं शातं त्वदुदरमिदं मातरत्यन्तगुह्यं
भूयात्तन्मे बहुविधभवश्रान्तिविश्रान्तिहेतुः ।।४६।।

हे माता ! ग्रयुत-ग्रयुत (ग्रसंख्य) ब्रह्माण्ड बुल-बुलों के समान जिस महाकाश (महान ग्राकाश या प्रकाश) रूपी ग्रापके उदर में निरन्तर उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं; वह ग्रत्यन्त गुह्य ग्रापका उदर-

प्रदेश मेरे बहुत से जन्मों के घूमते रहने के कष्ट को विनष्ट करने का साधन (या कारण) बन जाय।

भाव यह है कि समस्त ब्रह्माण्ड शून्य-महाकाश में लीन होते हैं 'कालानां कलनात्काली' जो सबको अपने में उदरसात् करने की क्षमता युक्त हैं, वे पराम्बा ही हैं; अतः उनके उदर-प्रदेश में ही जन्म-जन्मान्तरों के गमनागमन के चक्रों का भी पर्यवसान हो जाय यही भक्त की भावुक प्रार्थना है ॥४६॥

अब भगवती के प्रथम दक्षिण हस्त से प्रार्थना करते हैं—

ब्रह्मादीनामगणितवतां लीलयोल्लासितानां
पश्चात्तेषां पुनरपि तथा लीनतां प्रापितानाम् ॥
दक्षो दक्षो गणनरचनापेशलामक्षमालां
बिभ्राणाया मम करवरो मङ्गलं सन्तनोतु ॥४७॥

हे माता ! ब्रह्मादिक अगणित देवता जो आपकी लीला मात्र से नित्य उत्पन्न और निलीन होते रहते हैं, उनकी गणना के लिये धारण की गई अक्षमाला को संचालित करता हुआ आपका प्रथम श्रेष्ठ दक्षिण हस्त मेरा मंगल करे।

भाव यह है कि अक्षमाला के परिभ्रमण से देवादिकों की उत्पत्ति और निलीनता, (अनवरत संचरित होने की गणना) हो रही है। अक्ष शब्द से अ से क्ष पर्यन्त मातृका का विकास भी भगवती द्वारा वर्णित है।

उक्त पद्य सहित आगे के ४८, ४९, ५० वें तीनों पद्यों में चतुर्भुजा भगवती बालाम्बा के चारों हस्तकमलों का ध्यान बतलाया गया है। पहला दाहिना हाथ ४७वें में दूसरा बाँया हाथ ४८वें में, पुनः तीसरा दाँया हाथ ४९वें में और चौथा बाँया हाथ ५०वें श्लोक में वर्णित है। 'मालापुस्ताभयवरकरा' श्लो. सं. ६९ में तथा प्रारम्भ में ही 'बालं बाला स्फटिकगुलिकामालिकापुस्तिकाढ्या' श्लो. सं. ५ में वर्णित कर भगवती के जिस चतुर्भुजास्वरूप का वर्णन है, उसका ही ४७ से ५० तक के पद्यों में वर्णन है ॥४७।

अब भगवती के दाहिनी ओर के वाम हस्त का वर्णन करते है—

शैवे वेदे निजविलसितोल्लेखनं वर्ततेनो
ब्रह्मादिभ्यस्तदपि कृपयाऽऽख्य पितुं कर्तुकामा ॥

दक्षे ऽ दक्षे भरणकरणे पुस्तकं स्वस्तिदक्षं
हस्ते धृत्वा झटिति हरतादन्यथाज्ञानजालम् ॥ ४८ ॥

हे माता ! आपने यह जान कर कि शैवादिक वेदों में आपकी महिमा का परिपूर्ण बखान नहीं हो पाया है, अतः ब्रह्मादिक उन सभी वेद-निर्माताओं को इस बात की शिक्षा देने के लिये दाहिनी ओर के बाँये हाथ में पुस्तक को धारण कर लिया है, अतः स्वस्तिमुद्रांकित अथवा स्वस्ति प्रदान करने वाला पुस्तक सहित वह हाथ मेरे अन्यथा (विपरीत, किसी बात को किसी दूसरी तरह समझने का भ्रमाभासस्वरूप) ज्ञान को शीघ्र ही (झट से) हर ले। (ऐसी मेरी प्रार्थना है)

भाव यह है कि ब्राह्म, वैष्णव, रौद्र, ऐश्वर, सादाशिव, शाक्त और शैव प्रभृति वेदों में भगवती की महिमा का वर्णन पूर्ण रूप से नहीं आ सकता क्योंकि इन देवों का ज्ञान सीमित है, और भगवती की महिमा निस्सीम, अतः इन्हें ज्ञान देने के लिये पुस्तक धारण करना उचित ही है।

अन्य भाव यह है कि वाङ्मय की उत्पत्ति भगवान् शङ्कर के डमरु-निनाद से मानी जाती है, अतः समस्त शास्त्र शैव वेद के अन्तर्गत आ जाते हैं, आगमों में तो भगवती का वर्णन है किन्तु निगमों में पर्याप्त नहीं हो पाया है, अतः इस शिक्षा के लिये अथवा भगवती का स्वरूप निगमागमातीत है, यह बतलाने के लिये पुस्तक धारण करना समुचित है।

तात्पर्य यह है कि भगवती की उपासना निगमागम-सम्मत है ॥४८॥

अब बाँई तरफ के दक्षिणहस्त का वर्णन करते हैं—

चिन्तां वित्ते सततमतुलां बिभ्रतां भ्रान्तिभाजा-
मानम्राणां जननि ! शरणं पादमूलं गतानाम् ॥
वाञ्छादावानलशमविधौ प्रावृषेण्यः पयोदो
भूयात्ते मे प्रवरवरदो दक्षपाणिर्द्वितीयः ॥४९॥

हे माता ! चरणकमलों की शरण में दीनतापूर्वक आये हुए व्यक्तियों की चिंताओं को नष्ट करने के लिये एवं दावानल के समान बढ़ती हुई अनन्त-इच्छाओं के दाह को मिटाने के लिये वर्षाकालीन मेघ के समान वर-मुद्रा धारण किये हुए आपका दूसरा दाहिना हाथ मुझे वर प्रदान करे।

भाव यह है कि चिताएें चिता से अधिक निरन्तर दाहशीला होती हैं, अतः जगदम्बा के चरणकमलों की शरण में आते ही उनका शमन तो हो ही जाता है, अब इच्छाओं की पूर्ति का ही विषय रह जाता है जिसके सम्बन्ध में वर्षाकालिक मेघ की उपमा दक्षिण हस्त से देकर बतलाया गया है कि जिस प्रकार मेघ असीम जल-वृष्टि करते हैं उसी प्रकार अशेष और अनन्त-कामनाओं की पूर्ति सूचक भगवती का वरमुद्रा युक्त फलद द्वितीय दक्षिण हस्त है। चिन्ता से अन्तःकरण की दुर्वृत्तियों का निरसन और वर्षाकालिक मेघ से लौकिक मनोरथों की उपलब्धि का लक्ष्यार्थ है। जिस प्रकार 'पर्जन्यादन्नसम्भवः' मेघों से ही विविध-फल एवं शस्य (धान्यादि) उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार भगवती के द्वितीय दक्षिण-हस्त रूपी कल्पवृक्ष से अपरिमित वरदान भक्तजनों को प्राप्त होते हैं, इसी भाव को उक्त पद्य में बतलाया गया है ॥४९॥

अब बाँई तरफ के बाँये हाथ (चतुर्थ हस्त) का वर्णन करते हैं—

सन्दष्टानां विषमविषयाऽऽशीविषैर्मूर्च्छितानां
सन्तप्तानां जननमरणक्लेशदावानलेन।।
भीतानां त्वं दरविटपनां मूलमुन्मूलयन्ती
हस्तं तुर्यं झटिति शिरसि स्थापय त्वं मदीये ॥५०॥

हे माता ! विषम विषय (इच्छा) वासना रूपी भयङ्कर भुजङ्गमों के डसने से मूर्छित हुए, जन्म और मरण रूपी कष्टों की अग्नि से दग्ध (दाझे) हुए, (किंकर्त्तव्य विमूढ़) अतः भयत्रस्त व्यक्तियों के भयमूलक वृक्षों को जड़ से उखाड़ती हुई, आप अपना चौथा हाथ (क्रम से द्वितीय वामहस्त) जो अभयमुद्रा से विभूषित है, उस हाथ को हे माँ ! झट से (या झटपट) मेरे मस्तक पर स्थापित कर दो (जिससे कि मैं सर्वथा-निर्भय सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हो जाऊँ)।

भाव यह है कि वासना-ग्रस्त मनुष्य सदसत्कार्यविवेक खो बैठता है, अतः दिङ्मूढ़ बन जाता है जगदम्बा की कृपा ही उसकी रक्षा करती है, तभी उसे अभय प्राप्त होता है; और जो जगदम्बा द्वारा अभय प्राप्त हो जाते हैं, उन्हें फिर स्वयं के भरण-पोषण की चिंता ही क्यों रहे ? उदरदरी की पूर्ति के लिये ही मनुष्य अनेक बार अनुचित कार्य भी कर बैठता है, यह प्रसिद्ध ही है। जब पराम्बा स्वयं 'तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्' जैसा आश्वासन अभय-मुद्रा से दे देती हैं तो भक्त का

निश्चिन्त हो जाना भी स्वाभाविक है; अतः इस पद्य में भगवती के चतुर्थ-हस्त को इसीलिए मस्तक पर रखने की प्रार्थना की गई है जिससे कि भक्त को निश्चिन्तता रूप वर प्राप्त हो जाय ।।५०।।

अब भगवती की वेश-भूषा में कंचुकी का वर्णन करते हैं—

चञ्चच्चामीकररुचिरतागर्वसर्वङ्कषाणां
कौशेयानां विमलवसनैर्निर्मिता कञ्चुकी ते ।।
एकावल्या मणितरलया निर्भरं दीप्रकान्तिः
पीताऽप्येनः पिबतु सकलं चिन्तिताचित्तमध्ये ।।५१।।

हे माता ! चमक से झिलमिलाते हुए स्वर्ण की सुन्दरता के घमण्ड को चूर-चूर करने वाले अतः अनुपम रेशम के वस्त्रों से बनी हुई कंचुकी (कांचली) ने जिस प्रकार आपके वक्षःस्थल पर विराजमान एकावली (रत्नहार) में जड़े हुए मुक्तादिरत्नमणियों की समस्त शोभा को आत्मसात् कर लिया है, उसी प्रकार चित्त में उस दिव्यशोभा के चिंतन करने वाले (स्तोत्रकार या इस स्तोत्र से स्तवन करने वाले साधक के) समस्त पापों को यह पी जाय क्योंकि यह पीता (पीले रंग की अथवा कान्तियों को पीने वाली) तो है ही ।

भाव यह है कि भगवती की धारण की हुई कंचुकी अमित आभा-वाली है । पीले रंग की होने पर भी उसमें एकावली के मणिरत्नों की छवि शवलता है । पीता शब्द में श्लेष है । पीले रंग की कंचुकी होने में तन्त्र विरुद्धोक्ति की आशङ्का का निराकरण पूर्वोक्त ४५वें श्लोक की भाँति समझना चाहिये । यह स्तोत्र भगवती में जननीभाव को लक्ष्य लेकर लिखा गया है, अतः पुत्र का अपनी माता की कंचुकी की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक भी है ।।५१।।

श्री भगवती की वक्षःस्थली का वर्णन करते हैं—

शुक्रादीनां विपुलमहसां तारकाणामदभ्रं
सन्मुक्तानां निजसुषमया विस्मयोत्पादिनीनाम् ।।
हारैस्तारैर्मणितरलितैश्चारु वक्षस्स्थली ते
ध्याता मातर्हृदयकमले सन्ततं शन्तनोतु ।।५२।।

हे माता ! निर्मल आकाश में बहुत प्रकाश वाले शुक्र आदि तारा गणों की आभा को भी, धारण किये हुए हार के मणिरत्नों से तिर-

स्कृत करने वाली शोभायुक्त जो आपकी सुन्दर वक्षःस्थली है, वह हृदय-कमल में ध्यान करने वाले व्यक्तियों का सदैव मङ्गल करे।

भाव यह है कि जगदम्बा के वक्षःस्थल पर हारावली है, वह विविध मणि-रत्नों से परिपूर्ण है, उन रत्नों की शोभा से निर्मल आकाश में चमकने वाले शुक्रादि ग्रहों की आभा भी तिरस्कृत हो रही हैं। इस बात को स्तोत्रकार कहते हैं कि वक्षःस्थल रूपी शुभगगन में चमकती हुई मणियों की छवि को देख कर शुक्र आदि ग्रहों को यह विस्मय उत्पन्न होता है कि ये दूसरे ग्रह हमारे से भी अधिक चमकीले कहाँ से उदित होने लगे ? इस प्रकार की शोभामयी वक्षःस्थली का जो भी ध्यान करते हैं, उनका सदैव मङ्गल होता है। सन्मुक्तानां शब्द से एक अ य यह भाव भी ध्वनित होता है कि शुक्रादि तारक-गण तो भगवती के आराधनमात्र से सन्मुक्त (अच्छी गति को प्राप्त) हो गये हैं, ऐसी स्थिति में निर्मल आकाश में विस्मय उत्पन्न करने वाली वस्तु आपकी वह वक्षःस्थली ही है जिस पर धारण किये गये मणि-मुक्तारत्नादिकों को लोगों द्वारा विस्मय से ही तारकों की भाँति माना जा रहा है ॥५२॥

अब भगवती के मुखमण्डल का वर्णन करते हैं—

राकाचन्द्रो जननि ! सततं त्वत्पदम्भोरुहाणां
नित्यं कुर्वन्नपचितिचयं कान्तिमत्त्वं प्रपेदे ॥
सोऽयं प्राप्तुं कथमनुपमस्त्वन्मुखस्योपमानं
शक्तो लोके तदवतुतरामाननं पावनं माम् ॥५३॥

हे माता ! पूर्णिमा का परिपूर्ण चन्द्रमा नित्य आपके चरण-कमलों की आराधना के फलस्वरूप ही कान्ति को प्राप्त कर (भक्त होने के कारण) कान्तिमान् बनता है, वह बेचारा चन्द्र आपके अनुपममुख की उपमा के लिये किस प्रकार (गणना के लिये) योग्य ठहर सकता है; अतः आपका अनुपम पवित्र और भक्तों को भी पवित्र करने वाला मुखमण्डल सदैव मेरी रक्षा करे।

भाव यह है किसी वस्तु की श्रेष्ठता को बतलाने के लिये अन्य किसी श्रेष्ठ वस्तु की उससे समता बतलाकर उस वस्तु से अन्य वस्तु का बोध कराया जाता है। मुख की उपमा प्रायः कमल अथवा पूर्णचन्द्र से सामान्यतः दी जाती है। कमल में शोभा तो है किंतु तेज नहीं; अतः उसे कैसे लिया जाय ? हाँ पूर्णिमा का चन्द्र तेजो युक्त एवं शीतल-पावन शोभा

संपन्न होता है,उसका समता के लिए किसी तरह विचार हो सकता है। इस विषय में स्तोत्रकार कहते हैं कि चन्द्रमा तो आपके चरणकमलों की सेवा के प्रसादस्वरूप ही अपनी कान्ति को प्राप्त करता है तो यह स्वतः सिद्ध बात है कि जो शोभा आपकी कृपा से प्राप्त हुई है, उस शोभा वाला याचक किस प्रकार आपके समान होगा? वह तो हो ही नहीं सकता अतः आपका पवित्र मुख तो अनुपम (सर्वथा उपमा रहित अथवा जिसकी उपमा किसी से दी ही नहीं जा सकती) अतः सर्वश्रेष्ठ ही है, इसलिए वह मेरी रक्षा करे। चन्द्र का कलङ्की होना, घटना-बढना आदि बातों के कारण उपमा के लिये तिरस्कृत किया जाना तो प्रसिद्ध ही है जैसे 'सियमुख समता पाव किमु, चन्द्र बापुरो रंक' आदि । किन्तु इस पद्य में चन्द्रमा की तिरस्कृति का जो हेतु दिया गया है वह सर्वथा विलक्षण है ।।५३।।

अब श्री भगवती की नासिका का वर्णन करते हैं—

नार्हो नासां तुलयितुमयं नासया कीरवीरो
नैवाप्यर्हं तिलककुसुम नाऽपि चम्पाकलीयम् ॥
तत्सादृश्यं भजतु कतमद्वस्तु नैतद्विजाने
नासा सा मे दुरितदलनी मानसे मातरास्ताम् ॥५४॥

हे माता ! कीर वीर (उत्तम शुक) 'आपकी नासिका की कोई उपमा नहीं बन सकता (जैसी कि प्रकृत उपमा दी जाती है, क्योंकि वह उससे अत्यन्त तुच्छ है) तिल का पुष्प और चम्पाकली भी उसकी समता नहीं कर सकते (ऐसी स्थिति में) हे माँ ! कौन-सी ऐसी वस्तु हो, जिसकी उपमा आपकी नासिका से दी जाय ? यह मैं नहीं जानता (क्योंकि मैं स्वल्पज्ञ हूँ) इससिए आपकी नासिका की अनुपम शोभा, जो मेरे कष्टों का निवारण करने वाली है, सदैव मेरे मन में बसी रहे ।।५४।।

अब श्री भगवती के मन्दस्मित का वर्णन करते हैं—

ओष्ठच्छाया रदनसुषमाऽऽलिङ्गिता मन्दहासा
वाचां देव्या महितरसनाऽऽसीनया स्वीयसख्या ॥
निर्यान्ती ते वदनसदनात्पाटलीपुष्पवेषा
शस्ते साऽऽस्तां हृदयकमले सर्वदा मामकीने ।।५५।।

हे माता ! आपकी मन्द मुस्कान के समय आपके ओष्ठों (होठों) की आभा रदन (दन्तपंक्तियों की शोभा) से मिली-जुली (आलिङ्गन करती

हुई) होकर जब वाणियों की अधिष्ठात्री (वाग्देवी सरस्वती) जो कि आपकी दिव्य रसना (जिह्वा) पर सदा विराजमान रहती हैं, के साथ मिल कर सखियों की भाँति आपके मुखरूपी सदन से पाटली पुष्प (गुलाब) का वेष धारण कर बाहर निकलती हैं तो वे (बाहर आकर) मेरे हृदयरूपी कमल में सदैव विहार करती रहें।

भाव यह है कि एक ओर होठों के रक्त होने से होठों की छाया रक्तवर्णा और रदन (दन्तपंक्ति) के श्वेत होने से ये सितरक्त शोभावली दोनों सखियाँ हैं, दूसरी ओर सितवर्णा सरस्वती तथा शोणवर्णा रसनाच्छाया दो सखियाँ हैं, इस प्रकार ये चारों सखियाँ मानों मुखरूपी घर में साथ-साथ रहती हैं; मन्दस्मित के समय उक्त चारों सखियाँ बाहर घूमने के लिये सितसखी, सित के साथ और रक्तवर्णा सखी रक्तसखी के साथ निकलती हैं तो सितशोण सखियों के मिलन से चारों मिल कर पाटली पुष्प का रूप ले लेती हैं, तो उनसे प्रार्थना है कि देवियों के आसनोचित हृदयकमल में ही वे सदा निवास करें।

तात्पर्य यह है कि भगवती का मन्दस्मित-स्वरूप सदैव हृदय में विराजमान बना रहे। सौन्दर्यलहरी में भी सितवर्णा सरस्वती को माणिक्यरूपा स्वरूप में परिणत होने का वर्णन किया गया है—

अविश्रान्तं पत्युर्गुणगणकथाम्रेडनजपा
जपापुष्पच्छाया तव जननि ! जिह्वा जयति सा।।
यदग्रासीनायाः स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी
सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा।।

किंतु प्रकृत पद्य में उससे भी विलक्षण और रमणीय भाव लिया गया है ।।५५।।

श्री भगवती के ताटङ्कों का वर्णन करते हैं—

छायानाथस्तवतनुलता शोभया निर्जितोऽयं
राकाचन्द्रस्तवमुखमिदं वीक्ष्य लज्जां प्रपन्नः।।
ताटङ्कत्वं जननि ! भजतः कर्णमूले ततस्तौ
सा त्वं सर्वाः सदयहृदये ! कामनाः पूरयाशु ।।५६।।

हे माता ! आपके शरीर की शोभा से सूर्य पराजित है और पूर्णिमा का पूर्णचन्द्र भी आपके मुख को देख कर (उसकी शोभा के समक्ष)

लज्जा को प्राप्त हो गया है, अतः सामने आने के डर से इन दोनों (बेचारों) ने कर्ण भाग के निम्न स्थान में ताटङ्क के रूप में स्थान प्राप्त कर लिया है, इस प्रकार आपने शरण में आये हुए सूर्य और चन्द्रमा की रक्षा की है, अतः हे सदैव हृदय में दया रखने वाली माँ ! जिस प्रकार आपने सूर्य और चन्द्रमा की कामना नित्य-सेवा परायणता के रूप में स्वीकार कर पूरी की है, उसी प्रकार मेरी कामनाओं को भी पूर्ण करो। सूर्य और चन्द्रमा का कुण्डल रूप में, एवं नेत्रों के रूप में प्रयोग अन्य स्तोत्रों में भी हुआ है किंतु शरणागत-रक्षण की कृपापूर्ण दयालुता का भाव प्रकृत पद्य में अन्य स्तोत्रों से भी मनोरम है ।।५६।।

अब श्री भगवती के गण्डयुगल का वर्णन करते हैं—

बद्ध्वावैरं निजसुषमया गण्डयुग्मेन साकं
प्राप्तं योग्यं फलमपि तया पाटलीपुष्पकान्त्या ।।
याता यस्मात् कतिपयदिनस्थायिनी भङ्गुरत्वं
तन्मे नित्यं हृदि निवसतां मञ्जुलं गण्डयुग्मम् ।।५७।।

हे माता ! पाटली पुष्प (गुलाब के फूल) की कान्ति ने अपने स्वयं की आभा से वैर बांध कर जो आपके गण्ड-युग्म (कपोलद्वय) की समता करने का दुःसाहस किया, इस दुःसाहस का उसे तत्काल फल मिल गया कि उसे भङ्गुरत्व (शीघ्र ही झड़ कर सूख जाने या नष्ट होने) का फल प्राप्त हो गया। अर्थात् आपके गण्ड-युग्म की जो पाटली पुष्पशोभा है वह तो चिरस्थायिनी है, उसकी समता करने वाली वस्तु नित्य कैसे हो सकती है ? और इस अनौचित्य के कारण उसकी अनित्यता उचित ही है। अतः हे माँ ! आपके गण्ड-युग्म की जो नित्य सुन्दर शोभा है, वह सदैव मेरे हृदय में निवास करे।

भगवती का वर्ण गौर है, वे रक्ताम्बरा हैं, मणि-माणिक्यादि से युक्त हैं, अतः विविध छवियों से मिल कर जगदम्बा के गण्ड युग्म की शोभा पाटलीपुष्पशोभा के समान है, यह स्पष्टतः सिद्ध है ।।५७।।

अब श्री भगवती के नेत्र-कटाक्ष का वर्णन करते हैं—

पद्मा पद्मं तरलमधुपाऽऽलिङ्गितं सम्प्रहित्वा
स्वोत्कर्षार्थं जननि ! वसति त्वत्कटाक्षे चिराय ।।
यस्यप्रार्थी प्रतिदिनमयं स्वर्गभूसार्वभौमो
भूयात् सोऽस्मद्द्रविणजलधेर्वर्धने पूर्णचन्द्रः ।।५८।।

हे माता ! श्री भगवती लक्ष्मी ने अपने निवास स्थान कमल को, चञ्चल भौंरों से आक्रान्त हुआ देखकर, छोड़ दिया है, और आपके उन कटाक्षों में सर्वदा के लिए निवास बना लिया है, जिन (कटाक्षों-करुणा-मयदृष्टि) को प्राप्त करने के लिए यह स्वर्गभूमि का सार्वभौम (चक्रवर्ती राजा) इन्द्र भी प्रतिदिन लालायित बना रहता है; वे आपके वात्सल्य-भाव से परिपूर्ण कृपा - कटाक्ष, चन्द्रमा की भाँति हमारे सम्पत्तिरूपी समुद्र को बढ़ाने में लगे रहें।

भाव यह है कि पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार आता है और वह उछलता हुआ बढ़ा हुआ, जिस प्रकार दिखाई देता है, उसी प्रकार आपके कटाक्ष रूपी चन्द्रमा से (क्योंकि उनमें लक्ष्मी का आवास है)हमारी संपत्ति या श्री की अभिवृद्धि हो अर्थात् आपकी कृपा से भगवती श्रीमहालक्ष्मी भी हमारे उपर प्रसन्न होकर हमारा ऐश्वर्य बढ़ाती रहें अथवा आपकी कृपा से हम भी इन्द्र के समान समृद्ध-साम्राज्य के अधिकारी बने रहें।

भगवती श्री लक्ष्मी द्वारा अपने निवास:स्थान कमल को छोड़ने की जो चर्चा की गई है, उसका भावार्थ यह है कि जिस प्रकार कोई पद्मा (सुलक्षणों से युक्त साध्वी पद्मिनी स्त्री)अपने मकान पर मधुप (भौंरों अथवा मधु-शराब के पोने वालों) का आगमन देखकर लज्जा से उस मकान को छोड़कर अन्यत्र कहीं चली जाती है, उसी प्रकार श्री लक्ष्मी ने भी अपना वास-स्थान छोड़ दिया और उस स्थान की अपेक्षा सुन्दर स्थान (आपके नेत्र-कटाक्ष में) बना लिया है, जिसके कि कृपाकांक्षी देवराज इन्द्र भी बने रहते हैं; इस प्रकार के आपके नेत्र - कटाक्ष से हमारा सदैव कल्याण होता रहे; यही प्रार्थना इस श्लोक में की गई हैं ॥५८॥

अब भगवती के नेत्रयुगल का वर्णन करते हैं—

जाग्रत्पङ्करुहदलवरश्रीमदभ्रावणं य-
च्चञ्चत्तारं नयनयुगलं कीर्णकारुण्यमन्तः ॥
भक्तत्राणप्रणयनविधौ बद्धदीक्षं त्वदीयं
तापं पापं नयतु नितरां मातरन्ते वदान्ये ॥५९॥

हे माता ! खिले हुए कमलदल की शोभा को भी लज्जित करने वाले और चमकने वाली चञ्चल-पुतलियों से युक्त एवं नैसर्गिक करुणा के भाव से भरे हुये, शोभायुक्त आपके नयन-कमल, जिन्होंने भक्त की रक्षा करने

का व्रत ले रखा है, ऐसे आपके श्रेष्ठ युगल-नेत्र मेरे ताप और पाप को दूर करें क्योंकि आप वदान्या हैं।

भाव यह है कि भगवती की करुणामयी दृष्टि पड़ते ही भक्त के सभी कष्ट शीघ्र दूर हो जाते हैं। नेत्र दो हैं इसलिये ताप और पाप का पद्य में पृथगशः निर्वचन किया गया हैं। कमल समस्त पुष्पों में अतिशय शोभायुक्त एवं विशाल होते हैं, अतः नेत्रों से उनकी प्रायः उपमा दी जाती है, किंतु परामबा के नयनों के समक्ष तो कमलदलों की शोभा भी तिरस्कृत हो जाती है, अतः कृपापूर्ण दृष्टि वाले ऐसे श्रेष्ठ नेत्रद्वयों से ताप और पाप दूर करने की प्रार्थना की गई है। प्रथम नेत्र की पीयूष दृष्टि से ताप अर्थात् बाहरी कष्ट और द्वितीय नेत्र की प्रेम दृष्टि से पाप अर्थात् आंतरिक कलुष निरसन की प्रार्थना की गई है।

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भगवती तो त्रिनेत्रा है, तब **नेत्रद्वय का ही वर्णन क्यों किया गया?** इसका समाधान यह है कि इस स्तोत्र में प्रकृत मातृभाव का ही स्तवन प्रमुख है और माता-पिता का लौकिक रूप ही अभीष्ट है। तृतीय नेत्र प्रायः बंद ही रहता है क्योंकि वह अग्निस्वरूप है, केवल संहार स्थिति में ही वह खुलता है, अतः प्रकृत प्रार्थना में उसका विशेष हेतु भी नहीं है ॥५६॥

अब श्री भगवती के भ्रूयुगल का वर्णन करते हैं—

याते गर्वं मदननृपतौचापसौन्दर्यमूलं
निर्माय भ्रूयुगलमिषतो मादनंचापयुग्मम् ॥
मातर्गर्वं सकलमहरस्त्वं तदीयं तदेतत्
भ्रूयुग्मं ते नयनसुभगं स्वान्तपद्मे ममास्ताम् । ६०॥

हे माता! जब अपने सुन्दर धनुष को देखकर राजा कामदेव को यह अहङ्कार हो गया कि मेरे पास बहुत सुन्दर धनुष है, तो उसके इस गर्व को नष्ट करने के लिए आपने अपने भ्रूयुगल [दोनों भ्रकुटियों, (भौंहों)] के बहाने से अत्यन्त मादक और उससे भी अधिक सुन्दर दो धनुषों को धारण कर लिया, इस प्रकार आपका दो धनुषों को धारण करना भी सर्वथा उचित ही था, क्योंकि आप सबका अभिमान नष्ट करने वाली हैं अतः हे माँ! आपकी धनुष के रूप में बनी हुई (धारण की हुई) दोनों भ्रकुटियाँ (जो सबका घमण्ड तोड़ने वाली हैं,) मेरे हृदय-कमल में सर्वदा विद्यमान रहें अर्थात् मुझे अपराजिता शक्ति प्राप्त हो

जाय जिससे कि मैं अहङ्कारी चित्तवृत्तियों अथवा दम्भी शत्रुओं का मान-मर्दन कर सकूँ।

भाव यह है कि भगवती सब का मान-मर्दन करती हैं, यह प्रसिद्ध बात है। निशुम्भ शुम्भ और महिषासुरादिकों के वध इसके उदाहरण हैं। कामदेव संसार को जीतने वाला राजा के समान प्रसिद्ध ही है और यह क्रिया वह अपने धनुष पर वसन्त आदि पाँच बाणों की सहायता से करता है, अतः संसार को जीतने वाले राजा के समान (जैसे राजाओं को अपने अस्त्र शस्त्रों के प्रभूत बल पर गर्व हो जाता है) कामदेव को भी अपने बल पर गर्व होना सुतरां स्वाभाविक ही था, अतः उसका गर्व नष्ट करने के लिये भ्रूयुगल रूपी दो धनुषों को आपने धारण कर लिया, अतः उसका गर्व नष्ट हो गया क्योंकि उसके पास भले ही पाँच बाण हों, किंतु धनुष तो एक ही था, जबकि भगवती के पास भ्रूयुग्मरूपी दो धनुष हो गये; अतः वह बलहीन हो गया। इसके अतिरिक्त यह प्रसिद्ध भी है कि कामदेव ने भगवान् शङ्कर के चित्त को विचलित करने के लिये अपने धनुष का प्रयोग किया किंतु परिणाम में वह स्वयं भस्म हो गया और पुनः भगवती की कृपा से अनङ्ग रूप में जीवित हुआ; जबकि माता पार्वती के भ्रूयुगलरूपी दोनों धनुषों के सन्धान किये जाने पर भगवान् कामारिशङ्कर को भी उनसे विद्ध होना पड़ा; अतः ऐसे अपराजेय धनुषद्वय का निर्माण करने वाली श्री भगवती की दोनों भ्रकुटियों का नित्य स्मरण के लिये भक्त के हृदय-कमल में सर्वदा विराजमान रहने की प्रार्थना उचित ही है॥६०॥

अब चन्द्रकलामण्डित श्रीभगवती के मस्तक का वर्णन करते हैं—

जाता मातर्नयनसुभगा साऽष्टमीचन्द्रभाऽलं
भालं दृष्ट्वाऽनुपमसुषमं पापकालानलं ते॥
शङ्काऽऽतङ्काऽऽकुलितहृदयं बालकं तद्विशालं
भालं प्रेमप्रवणहृदये! शान्तशङ्कं करोतु॥६१॥

हे माता! आपने अपने भाल (मस्तक) पर अष्टमी के चन्द्रमा के समान जिस अर्द्धचन्द्र को धारण किया हुआ है, उस अर्द्धचन्द्रमा की आभा आपके द्वारा धारण किये जाने से अत्यन्त नयनरमणीय बन गई है। यद्यपि पूर्णिमा के पूर्ण-चन्द्र की शोभा ही आनन्दित करने वाली होती है, तथापि पाप रूपी काल को भी जला डालने वाले दिव्य शोभामय आपके भालप्रदेश को स्पर्श कर लेने के कारण ही उस अर्द्धचन्द्र की

आभा को वह महत्त्व प्राप्त हुआ है अथवा उसकी अपूर्णता या विकलाङ्गता उसे वरदान के समान सिद्ध हुई है और ऐसे अर्द्धचन्द्रमा को धारण करने से अष्टमी तिथि भी धन्य हो गई है, अर्थात् उसे प्रमुख पर्वतिथि होने का सौभाग्य भी इसी कारण प्राप्त हुआ है, अतः अत्यन्त प्रेम से युक्त दयावाली माँ ! वह आपका विशाल (प्रशस्त) भाल, शङ्काओं के आतङ्कों से व्याकुल हृदय वाले इस बालक को (शीघ्र ही)शङ्काओं से रहित कर दे। बस यही आपसे प्रार्थना है।

भव यह है कि प्रत्येक मास के दोनों पक्षों की अष्टमी को चन्द्रमा का आधा-बिम्ब ही दृश्य होता है, अतः श्री भगवती के मस्तक पर विराजमान अर्द्धचन्द्र अष्टमी के चन्द्रमा के समान ही होता है। अष्टमी प्रमुख पर्वतिथि है, अतः उक्त तिथि के प्रमुख पर्व माने जाने का हेतु उस तिथि के चन्द्रमा का भगवती के भालप्रदेश से स्पर्श हो जाना ही है। शङ्काओं से तात्पर्य अज्ञान अथवा अन्यथा ज्ञान से है, अतः प्रत्येक अष्टमी के महापर्व पर जो व्यक्ति जगदम्बा का अर्चनपूजन करते रहते हैं, उनके अज्ञान या मिथ्या किंवा अन्यथा ज्ञान का नष्ट हो जाना उचित ही है ॥६१॥

अब श्री भगवती के केशों का वर्णन करते हैं—

भक्तस्वान्तान्तरकुहरगोऽज्ञानगाढान्धकार--
स्त्वद्वक्त्रेन्दो रुचिमभिमुखं वीक्ष्य निस्सृत्य तूर्णम् ॥
सम्प्राप्तस्त्वां शरणमरुणे ! केशपाशच्छलेन ।
न्यस्तः शीर्षे बहुकरुणया यस्त्वया सोऽस्तु भूत्यै ॥६२॥

हे माता ! भक्त के हृदय प्रदेश में छिपा हुए अज्ञान का गहरा अन्धकार आपके मुख रूपी चन्द्रमा की शोभा को अपने समक्ष देख कर (भयभीत होकर कि मैं अब कहाँ जाकर रहूँ) तुरन्त ही वह तेजी से निकल कर जब आपकी शरण में आया तो हे क्रोध से लाल हुई माँ ! आपने उस अँधेरे को भी अत्यन्त करुणापूर्वक (उसके लिये अन्य कोई स्थान नहीं रहने के कारण) अपने मस्तक पर धारण कर लिया। वही घनी-भूत निबिड़तम अन्धकार अब लोगों को आपके केशपाश के रूप में दिखलाई पड़ रहा है। अर्थात् आपकी केशराशि वस्तुतः आपके भक्तों के हृदय में घनीभूत अन्धकार का वह पुञ्ज ही है, जिसे आपने करुणा-पूर्वक अपने मस्तक पर धारण कर रखा है। आपका वह केशपाश, हे माँ ! हमारा कल्याण करे।

इस पद्य में 'अरुणे' सम्बोधन विशेषतः भावपूर्ण है। क्रोध और करुणा दोनों ही मनोभावों में अरुणवर्ण की सङ्गति हो सकती है। पापों की कालिमा भी प्रसिद्ध है ॥६२॥

अब श्री भगवती के केशों की वक्रिमा का वर्णन करते हैं—

पाप तोमो न सरल इति प्रेक्ष्य मातस्त्वदीया
अङ्गीचक्रुः शिरसिजवरास्तोव्रकौटिल्यभावम् ॥
एवं सत्यप्यतुलमहिमे ! स्वान्तपद्मे ममैते
सारल्येनातिशयमनिशं मङ्गलायोल्लसन्तु ॥६३॥

हे माता ! पापों का समूह सरल नहीं है, यह समझ कर ही आपके केशों ने भी टेढ़ापन धारण कर लिया है। (केश प्रायः टेढ़े (कुटिल) होते हैं, अतः उनकी वक्रिमा पर यह कल्पना है) इस प्रकार केशों के कुटिल रहने पर भो हे अतुलनोय महिमा वाली माँ ! मेरे हृदय कमल में विराजमान आपके केश सरलता पूर्वक (मेरे लिये अत्यन्त सरल बन कर) मङ्गल के लिये उल्लसित हों क्योंकि उनके टेढ़े होने पर मेरा हृदय फट जायगा अतः सदैव उनकी वक्रिमा मेरा मङ्गल करे।

पूर्व श्लोक में भक्तहृदयान्धकार को केशपाश के रूप में कल्पित किया गया था, इस पद्य में पाप-राशि को केशराजि के रूप में कल्पित किया गया है। पाप के साथ वक्रता होना स्वाभाविक है, अतः सह-धर्मिता का गुण तत्तुल्य होना समुचित ही है ॥६३॥

अब श्री भगवती की वेणी का वर्णन करते हैं—

एणाक्षीभिः सततममृतं प्राश्नतां राज्यभाजां
प्रातर्नित्यं स्वकरकमलैर्नन्दनाऽऽरामजानाम् ॥
मन्दाराणां सुरभिकुसुमैराहृतैरर्चिता ते
वेणी वाणीपतिबहुनुताऽस्मच्छुभायाम्ब ! भूयात् ६ ॥४॥

हे माता ! निरन्तर अमृतपान करने वाली स्वर्ग की अधिष्ठात्री देवाङ्गनाओं द्वारा नित्य निरन्तर प्रातःकाल नन्दनवन के, अपने कर-कमलों द्वारा चुने गये सुरभि-पूर्ण कुसुमों से अपने कमल-तुल्य हाथों से अर्चना के रूप में गूँथी गयो जो आपकी मनोरमा कल्याणकारिणी वेणी है; वह, वाणीपति (ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर, गणपति, स्कन्द, बृहस्पति आदि देवों द्वारा) विविध रूप में बहुत रीति से नमन की गई है. अतः हे माँ ! वह मङ्गलकारिणी आपकी वेणी हमारा सदैव मङ्गल करे।

वाणी के अधिष्ठातृ रूप में विविध शास्त्रों में विविध देवों का वर्णन किया गया है, अतः इसका भाव समस्त देवताओं से वन्दित, भगवती की महिमा का अतिशय वर्णन ही है ।।६४।।

अब श्री भगवती के सर्वव्यापक तेजस्वी प्रभामण्डल का तादात्म्य-भाव से वर्णन करते हैं—

अन्तः शून्यो बहिरपि घटः शून्य एवाम्बरान्तः
अन्तःपूर्णो बहिरपि तथा पूर्णएवार्णवेऽस्ति ।।
एवं मातस्त्वमसि सततं शून्यपूर्णस्वरूपा
तत्वोतीर्णाऽप्यहमनुभवा तत्त्वरूपा त्वमेव ।।६५।।

हे माता ! यह घटरूपी जीवांश अन्दर से, बाहर से और सब तरफ से शून्यमय है, अर्थात् घटरूप में सर्वथा रिक्त है (जड़त्व बुद्धि के कारण) इसी प्रकार हे माता ! आप ही, शून्य और पूणस्वरूप वाली हैं, अर्थात् अंश और अंशी दोनों आपके ही स्वरूप भेद हैं । तत्त्व (पञ्च-तत्व या पञ्चविंशति प्रकृतितत्त्व या ३६ तत्व) सभी आपके ही स्वरूप हैं, और इनमें अनुस्यूत, इनसे पृथक् इनसे बढ़ कर भी जो मात्र 'मैं हूँ' यह अनुभव में आने वाला जो परतत्त्व (विशिष्ट अनिर्वचनीय) है, वह भी आपका ही स्वरूप है ।

भाव यह है कि जीव अपूर्णांश है और ब्रह्म पूर्ण-रूप । 'घट' क्षुद्रता का पर्याय अथवा बोधक है, क्योंकि पूर्ण होने पर भी उसकी दृष्ट-सत्ता है । समुद्र असीम और पूर्णता का पर्याय अथवा बोधक है । 'मैं हूँ' यह अहन्ता प्रत्येक चेतन में होती है किंतु सर्वात्मभाव से 'मैं हूँ' यह पूर्णाहन्ता का विमर्श ब्रह्म को ही होता है, अथवा जिन्हें उसका साक्षात्कार हो गया हो ऐसे सिद्धों को ही हुआ रहता है । शून्य और पूर्ण दोनों परस्पर पर्याय हैं । वेदों में भी 'खं ब्रह्म' कहा गया है। भागवती सत्ता के लिये उपनिषत्कार कहते हैं—

'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

अतः सर्वत्र सब में ब्राह्मी सत्ता है और सब, सबतरह तथा सब तरफ से उसी के स्वरूप हैं । मात्र अन्तर दृष्टिभेद का है । देव्यथर्वणो-पनिषत् में कहा गया है—

सर्वे वैदेवा देवीमुपतस्थुः । कासि त्वं महादेवोति । साऽब्रवीत

अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये । अहमेव सर्वं जगत् । इत्यादि । तात्पर्य यही है कि यच्च यावत् समस्त वस्तु भगवती के ही स्वरूपावयव हैं। प्रकृत पद्य में इसी भाव का समुपबृंहण किया गया है। अहमनुभव से अहं शब्द के अन्तर्गत अकार से हकार पर्यन्त सम्पूर्ण मातृकाओं का भी बोध होता है, जैसाकि श्रीश्रीविंशतिकाशास्त्र में आचार्यचरण ने कहा है—

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभावो यदायत्तः स्फुरेदयम् ।
तामात्मशक्तिं वन्देऽहं विज्ञानां महतीं हृदि ॥

श्री आत्मविलास में भी—

अभिनवरमणीयं सच्चिदानन्दकन्दं
स्वनवनवविलासोल्लासनैकप्रवीणम् ।
अभिनवसुरहस्यं मङ्गलं मङ्गलाना-
मधिहृदि परमेशं मौनमेवाश्रयेऽहम् ॥

इस प्रकार अग्नीषोमात्मक इस जगत् में सर्वत्र **साम-स्वरूपा** सर्वमयी सत्ता-रूप में वही पराम्बा सर्वत्र व्याप्त हैं, यही फलितार्थ निकलता है ।।६५।।

अब श्री भगवती के सच्चिदानन्दस्वरूप का वर्णन करते हैं—

सौधाम्भोधेस्तरललहरेरन्तराले सुरम्ये
रत्नद्वीपे सुरतरुवरैरावृते पारिजातैः ॥
ध्याये चिन्तामणिमयगृहे कामराजेशवश्यां
विश्वाधारां प्रणवकलिकां सच्चिदानन्दरूपाम् ।।६६।।

हे माता ! चंचल लहरों से सुरम्य अमृतसमुद्र में, जो रत्नों का द्वीप (मणिद्वीप) है, वह परिजात (कल्पवृक्ष) के वृक्षों से युक्त है, उस सुरतरुराजित रत्नद्वीप में चिंतामणियों से निर्मित सौध (देवहर्म्य) में अथवा अमृत-प्रासाद में कामराज (कामदेव, सूर्य अथवा भगवान् कामेश्वर शङ्कर) को वश में करने वाली, समस्त विश्व की आधार रूपिणी, प्रणव कलिका (ओंकार, समस्त वाङ्मय की मूलाधिष्ठात्री) सच्चिदानन्द (सत्+चित्+आनन्द, ओंकार त्रिवर्ण अ+उ+म् ये तीनों ही सत्+चित्+आनन्द के पर्याय प्रतीक हैं) उनके स्वरूप को धारण करने वाली भगवती श्री जगदम्बा जो (श्रीबालात्रिपुराम्बा) हैं, उनका ध्यान करता हूँ ।

इसी भाव को सौन्दर्यलहरी में भी कहा गया है—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ॥
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥

प्रणव कलिकां से तात्पर्य मूलशक्ति से है। प्रणव के मुख्यतः दो भेद हैं। 'परोरजसेसावदोम्' रज से परे अर्थात् गुणत्रय से परे निर्मल-प्रणव तथा सावदोम् अर्थात् शब्दातीत अथवा शब्दात्मक रूप में 'वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यः' इसीलिये कहा गया है। अकार, उकार और मकार तीनों ही सोम, सूर्य और अग्नि के प्रतीक हैं और ये ही त्रिबीज कामकलाक्षर भी हैं, अतः यही व्यक्ताव्यक्तप्रणव है, जिसे उमाप्रणव भी कहा जाता है। त्रिपुरामहिमस्तोत्र में भी—

आद्यो जाप्यतमार्थवाचकतया रूढः स्वरः पञ्चमः
सर्वोत्कृष्टतमार्थवाचकतया वर्णः पवर्गान्तकः।
बक्तृत्वेन महाविभूतिसरणिस्त्वाधारगो हृद्गतो
भ्रूमध्येस्थित इत्यतः प्रणवता ते गीयते चागमैः ॥

इसी भाव को स्पष्ट किया गया है। प्रणवरूपा महाशक्ति ही कुण्डलिनी है—

उमेति परमा शक्तिः पूर्वभावमुपेयुषी।
अध्युष्टवलयाकारा प्रणवत्वमुपागता॥
अकाररूपिण्यजरा शिवानन्ता मदद्रवा॥
ओङ्कारसारशक्तित्वादुमेति परिकीर्तिता॥

इस प्रकार प्रणव के दोनों भेदों (निर्मल प्रणव महाविन्दुरूप में और शब्द वेद्य तथा शब्दातीतरूप में) कामकलाक्षर त्रिकोणाधिष्ठात्री भगवती से ही समस्त वाग्व्यापार की सृष्टि होती है यह भी ध्वनित है ॥६६॥

अब कुण्डलिनी रूपा पराम्बा का ध्यान करते हैं—

मूलाधाराद्दशशतदलाम्भोजपर्यन्तमेकां
कामं सूक्ष्मामतुलचपलां वर्णनातीतवर्णाम् ॥
नित्यां सोमामृतकवलनाऽऽपुष्टगात्रीं कुमारीं
वामाक्षीं तां परममहिषीं भावये राजविद्याम् ॥६७॥

हे माता ! मूलाधार से लेकर सहस्रारचक्रपर्यन्त एक ही रूप में स्थित अत्यन्त सूक्ष्म, अतुल चंचल, (विद्युत के समान) जिसका वर्णन

नहीं किया जा सकता (वर्णनातीत) कुण्डलिनीस्वरूपा, वर्णरूपा (अं क्षं अथवा हंसः सोऽहम् शब्द बोध्या) नित्या (सदैव वर्तमान रहनेवाली) सोम रूप (चन्द्रमा से निःसृत) अमृतरूपपुष्टशरीरवाली कुमारीरूपा, परम-महिषी (परमेश्वरी) वामाक्षी राजविद्या भगवती की मैं भावना (आरा-धना) करता हूँ।

इस पद्य में भगवती की राजविद्या के रूप में भावना की गई है। राजविद्या की उपासना का योगमार्ग से संकेत किया गया है। राज-विद्या से तात्पर्य विद्याराज्ञी से है। सोमामृतकवलन का भाव चन्द्रमण्डला-धिष्ठात्री है। सोम शब्द का एक अर्थ उमयासहितः सोमः अर्थात् पार्वती सहित भगवान शङ्कर है, अतः अर्द्धनारीश्वरस्वरूप से भी बढ़ कर अथवा परिवर्धित शिवशक्तिसामरस्यात्मक जिनका कुमारी (बाला) स्वरूप है, उसी स्वरूप की भावना इसमें की गई है। कुण्डलिनीरूपा भगवती की भी स्तुति स्पष्ट ही है।

इसी भाव को सौन्दर्यलहरी में भी इस प्रकार बताया गया है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे॥

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा नामक छह चक्र हैं, इनमें पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश और मन ये छह तत्व हैं। इनमें गन्ध रूप रस स्पर्श शब्द ये तन्मात्राएँ हैं, पाँच पृथिव्यादि तत्व, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच तन्मात्राएँ और एक मन को मिलाकर २१ तत्त्व होते हैं. तथा माया, शुद्धविद्या, महेश्वर और सदाशिव ये चार महातत्त्व मिल कर २५ तत्व होते हैं। माया और महेश्वर के युग्म से जीव की सृष्टि होती है एवं माया पर्यन्त २५ तत्व माने जाते हैं; शुद्ध विद्या भगवती पच्चीसवें तत्त्व सदाशिव को अतिक्रान्त कर, उससे मिलकर स्वयं २६वाँ तत्त्व 'सादाख्य' अर्थात् परमेश्वर का रूप धारण करती है। कहा भी है—

एवं पिण्डाण्डमुत्पन्नं तद्ब्रह्माण्डाण्डमुद्भवौ।
पंचभूतानि शाक्तानि मायादीनि शिवस्य तु॥
माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ।

पञ्चविंशति तत्त्वानि तत्रैवान्तर्भवन्ति ते ।
शिवशक्त्यात्मकं विद्धि जगदेतच्चराचरम् ॥
त्रिकोणरूपिणी शक्तिर्विन्दुरूपशिवः स्मृतः ।
अविनाभावसम्बन्धःस्तस्माद्विन्दुत्रिकोणयोः (भैरवयामल) ॥

सहस्रारचक्र में ही शिवस्वरूप मूलविन्दु में भगवती का अधिष्ठान है। शिव में ही शक्ति और शक्ति में ही शिव की प्रतिष्ठा है और दोनों का अविनाभाव सम्बन्ध है । महर्षिदुर्वासा प्रणीत महिम्नःस्तोत्र में भी—

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोशइति ते संसारचक्रात्मकं
विख्यातं तदधिष्ठिताक्षरशिवज्योतिर्मयं सर्वतः ॥
एतन्मन्त्रमयात्मिकाभिररुणं श्रीसुन्दरीभिर्वृतं
मध्ये बैन्दवपीठसिंहललिते त्वं ब्रह्मविद्याशिवे ।।

इसी भाव को स्पष्ट किया गया है। वामाक्षी से तात्पर्य स्वर शक्ति से है, जिसके बिना वर्ण का उच्चारण ही असम्भव है ।।६७।।

अब पुनः बालाम्बा की महिमा का वर्णन करते हैं—

त्रातुं भक्तान् सदयहृदये ! निर्गुणाऽलक्षणीया
धृत्वा लोकेऽवतरसि पुनस्तत्तदाकारजातम् ।।
विज्ञायैवं निजगुरुमुखाच्चिन्तये ते स्वरूपं
प्रोद्यद्बालारुणशतनिभं स्वेष्टदं बालरूपम् ।।६८।।

हे माता ! भक्तों की रक्षा के लिये, करुणामयहृदयवाली आप, निर्गुण और लक्षणों रहित होने पर भी भक्तों की इच्छा या भावना के अनुरूप विविध आकार लेकर (काली, लक्ष्मी, सरस्वती प्रभृति) संसार में अवतीर्ण होती रहती हैं, इस तथ्य तत्त्व को अपने श्रीगुरु के मुख (क्रमदीक्षोपदेश) से प्राप्त कर आपके स्वरूप को (अनेक रूप में एकत्व भावमय जान कर) उदित हुए सैकड़ों बालसूर्यों के [समान दिव्य ज्योतिर्मय आपके बालात्रिपुरसुन्दरीस्वरूप का मैं चिंतन करता हूँ ।।६८।।

अब पुनः भगवती श्री बालात्रिपुराम्बा के दिव्य-स्वरूप-विग्रह का वर्णन करते है—

माला पुस्ताभयवरकरा कोटिबालारुणाभा
हालादिव्यामृतमदचलन्नेत्रपद्माभिरामा ।।
भालार्णालीं विधिविरचितां तन्वती सौख्यदात्रीं
बाला लीलाऽऽलयमनुपमं मानसे मे करोतु ।।६९।।

माला (अक्षमाला) पुस्तक, अभयमुद्रा और वरमुद्रा क्रमशः जिनके चारों कर-कमलों में हैं, करोड़ों नवोदित सूर्यों के समान जिनकी कान्ति है; अमृत के दिव्य-हासासव के पान करने से उत्पन्न मद के कारण जिनके चंचल नेत्रकमल और भी सुन्दर लग रहे हैं, ब्रह्मा के द्वारा भक्तों के भाल में लिखी गई वर्णपंक्ति का सुख देने के अभिप्राय से विस्तार करने वाली भगवती श्रीबालात्रिपुर-सुन्दरी मेरे (सब भक्तों के) मन को अपनी अनुपम-लीला का स्थान बनावें। अर्थात् मेरे मन में नित्य विहार करें ॥६९॥

अब श्री भगवती के आत्मस्वरूप का वर्णन करते हैं-

स्वात्माकारामपि भगवतीं स्वात्मना स्वात्ममध्ये
स्वानन्दाय स्वरचिततनूं स्वोच्छलच्छक्तिपूर्णः ॥
बालारूपां निजपरिजनैरावृतामर्चनायै
विश्वोत्पत्तिस्थितिलयकरीं मातरावाहये त्वाम् ॥७०॥

हे माता ! यद्यपि आप स्वात्माकार है, अर्थात् आपमें और मुझ में कोई तत्त्वतः भेद नहीं है, तथापि आपकी अपने ही आत्मरूप में अपने अन्तःकरण में अपने ही आनन्द के लिये अपने द्वारा रचित अपने ही शरीर से अपनी उछलती हुई शक्ति (भावना) से परिपूर्ण बाला-स्वरूप को अपने ही परिजनों से युक्त (आवरण देवताओं सहित) पूजन करने के लिये संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की तीनों ही अवस्थाएँ बनाने वाली या उनमें व्याप्त रहने वाली हे माँ ! मैं आपका आवाहन करता हूँ ॥७०॥

अब सर्वव्यापिका श्रीभगवती की महिमा का वर्णन करते है—

आदिक्षान्तं सकलमपि ते तत्त्वजालं विशालं
यस्या नित्यं हृदयकुहरीकोणमात्रे समस्ति ॥
तां त्वां मातः स्वपरमहिमोत्कृष्टसिंहासनेऽहं
भावाभावोत्कलनललने ! मानसे स्थापयामि ॥७१॥

हे माता ! अकार से क्षकार पर्यन्त जो समस्त विशाल तत्त्व-समूह है, वह आपके हृदय के कोण मात्र में व्याप्त है, वह माँ ! आपको स्वपरमहिमामय अपने आत्मतत्त्व के उत्कृष्ट उस सिंहासन पर (जहाँ स्व-पर अथवा अपने पराये का भेद नहीं रहता) तादात्म्य-भाव से, भाव और अभाव के उत्कलन करने वाली, भाव और अभाव के भेद को विनष्ट करने वाली; आपको मैं अपने मन में स्थापित करताहूँ। आत्मभाव से

युक्त हे माँ ! मैं आत्मानुभव रूप से आपको अपने हृदय में प्रतिष्ठित करता हूँ।

भावाभावोत्कलनजलने को मन का विशेषण बना देने पर भाव और अभाव के उत्कलन रहित समवृत्ति-युक्त अपने निर्मल-मन में आपको प्रतिष्ठित करता हूँ ।।७१।।

अब श्रीभगवती के स्तोत्र-पाठ का फल बतलाते हैं—

हे श्रीमातर्ममविरचितं सर्वदुःखापहारि
मन्दाक्रान्तास्तवनमतुलं ये पठिष्यन्ति भक्त्या ।।
मन्दाक्रान्तास्तवशिशुरहं निश्चयेन ब्रवीमि
मन्दाक्रान्ता जगति न जनास्ते भविष्यन्ति नूनम् ।।७२।।

हे माता ! मेरे (स्तोत्रकार) द्वारा विरचित सब दुःखों को नष्ट करने वाले इस मन्दाक्रान्तास्तोत्र (इसी छन्द में निबद्ध अतः छन्द के नाम से ही अभिकीर्तित) को जो भी भक्ति-पूर्वक पढ़ेंगे; उनके लिए मन्दाक्रान्तास्तव के समान (जैसा यह छोटा स्तोत्र है, उसी प्रकार छोटे-पुत्र के रूप में अवश्य ही पुण्यफल मिलेगा) यह मैं आपका मन्दाक्रान्त (धीरे धीरे पद न्यास करने वाला) शिशु निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि, इस स्तोत्र को पढ़ने वाले सभी मनुष्य कभी भी मन्दाक्रान्त (मन्दता से, मूढ़ता से आक्रान्त, घिरे हुए) नहीं रहेंगे। अर्थात् उनकी सभी ऐहिक एवं आमुष्मिक कामनाऐं पूर्ण होंगी। यह श्रीबालाम्बा का स्तोत्र है अतः एकात्मभाव-प्रतीति से स्तोत्रकार ने भी स्वयं के लिये शिशु - बालक शब्द का प्रयोग किया है। भगवान् आद्यशङ्कराचार्य ने भी सौन्दर्यलहरी में स्वयं के लिये 'द्रविडशिशु' शब्द का प्रयोग किया है ।।७२।।

अब स्तोत्र-निर्माण के समय का निर्वचन करते हैं-

काश्मीरस्थवराहमूलनगरे श्री शैलपुत्रीस्थले
श्रीमद्विक्रमतश्चदब्धिपमिते वर्षे गते कार्तिके ।
श्रीमातुःकरुणार्थिना स्तुतिरियं शुक्ले दशम्यांविधौ
क्षेमायाऽमृतवाग्भवेनरचिता भूयात्सतांप्रीतये ।।७३।।

कश्मीर प्रदेश में वराहमूल (बारमूला) नामक नगर में श्री शैलपुत्री (पार्वती के स्थल पर (मन्दिर में) या चश्मे के स्थान पर (श्री विक्रमादित्य के चिदब्धिप (अंकानां वामतो गतिः के अनुसार चि=६, द=८, ध=९, प=१ संवत् १९८६ विक्रमी में) कार्तिक शुक्ला दशमी

सोमवार के दिन श्री जगदम्बा की कृपाप्राप्ति के लिये श्रीमान् अमृतवाग्भव जी (उक्त नाम के आचार्यचरण) ने इस स्तोत्र की रचना की, जो सज्जनों को प्रसन्नतादायक रहे अथवा सज्जनों की प्रीति के लिये हो।

अब श्रीमान् आचार्यचरण अपने पूज्य श्रीमाता-पिता के चरणस्मरणपूर्वक स्तोत्र का उपसंहार करते हैं—

राधाकृष्णप्रणवसुरसारम्भसम्भूतदेहा
वन्द्यो विज्ञैः कविवरकलाऽङ्कृतः पुण्यपुञ्जम् ।।
मन्दाक्रान्तास्तवनजनितं पादपद्मे समर्प्य
श्रीश्रीपित्रोः स्मरति चरणौ सादरं स्तोत्रकारः ।।७४।।

श्री राधा और श्रीकृष्णरूपीप्रणव (शक्तिशिवसामरस्यरूप) के सुरस के आरम्भ रूप में (प्रणव के फल की प्राप्ति से) अथवा श्री राधा और श्रीकृष्ण का प्रण (वागर्थ की तरह अन्वितिरूप) वसु अर्थात् अन्विति मात्र सम्पत्तिरूपी सुरस के आरम्भ से ही जिसके शरीर का निर्माण हुआ है (जिनके कुल में राधाकृष्ण रूपी शक्तिशिवसामरस्यतत्त्व की उपासना होती रही है, या जिनके माता-पिता के उक्त नाम हैं) ऐसे विज्ञजनों में माननीय और श्रेष्ठकवियों कीवरकलाओं (विभूतियों से) सुशोभित अर्थात् श्रेष्ठ सत्कविता (श्रेयः और प्रेयमयी) का निर्माण करने वाले स्तोत्रकार (अनन्तश्री-विभूषित आचार्य श्रीअमृतवाग्भवजी महाराज) इस मन्दाक्रान्ता नामक स्तोत्र के निर्माण से अर्जित किये हुए पुण्यों के समूह को अपने पूज्य माता-पिता के श्री चरणों में समर्पित करते हुए अत्यन्त आदर के साथ अपने माता-पिता का पुण्य-स्मरण करते हैं ।।७४।

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामहिम-श्रीमदाचार्यामृतवाग्भव-प्रणीतो मन्दाक्रान्तावृत्तनिबद्धः श्री भगवतीस्तवः ।।

———

० व्याख्याकार द्वारा उपसंहार ०

बालाम्बायाः स्तवनमहितं श्रीमदाचार्यवर्यैः
प्रोक्तं दिव्यं तदनुमतिवाग्वारिमूर्द्धाऽभिषिक्तः ॥
श्रद्धाभक्तिप्रणयधनिनां मातृभाषाप्रियाणां
प्रीत्यै सम्यग् विवृतमकरोत् कोऽपि धन्यो रसेन्द्रः ॥१॥

लीलानीरे गतवति मितौ वैक्रमे हायनेऽस्मि-
ञ्छुक्ले पक्षे विलसति शुचौ मासि भौमे तुलेन्दौ ॥
तिथ्यां सृत्या दशमगणनाऽऽलिङ्गितायां जयन्त्यां
निर्मातुस्तच्चरणमतिना व्याकृतं स्तोत्रमेतत् ॥२॥

श्रीजानकीकेसरसद्मपद्म-
सौगन्धिकं यस्य यशश्शरीरम् ॥
सद्भिस्स्तुतं श्रीशिवमूर्तिमीशं
रामाभिरामं स्वगुरुं स्मरामि ॥३॥

बुद्धिप्रकाशयोगेन श्रीपदाम्बुजसेविना ॥
नगाग्निव्योमभूवर्षे स्तोत्रमेतत्प्रकाशितम् ॥४॥

॥ श्रीमन्दाक्रान्तास्तवापरपर्याय-श्रीभगवतीस्तवः सम्पूर्णः ॥

इस प्रकार मन्दाक्रान्ता छन्दोबद्ध श्री भगवतीस्तव की रसेन्द्र कवि रचित आनन्दमन्दाकिनी राष्ट्रभाषा व्याख्या पूर्ण हुई । श्रीचरणार्पणमस्तु ।

श्रीग्रन्थमाला के दो पुष्प

श्रीपञ्चस्तवी

द्वितीय संस्करण प्रस्तुत है। यह प्रथम लघुस्तवकी ६०० वर्ष से भी अधिक प्राचीन संस्कृत टीका तथा राष्ट्रभाषानुवाद के साथ मुद्रित हैं। शेष चार स्तोत्र मूलमात्र हैं। साथ ही इस संस्करण में श्रीमहानुभवशक्तिस्व भी दिया गया है। कागज और छपाई बहुत उत्तम है।

मूल्य—२.०० डाक व्यय अलग।

श्रीललितासहस्रकाव्यम्

राजराजेश्वरी भगवती ललिता त्रिपुरसुन्दरी के दिव्य सहस्रनामों की काव्यमयी व्याख्या। पुस्तक के अध्ययन से कविता का अनुपम आस्वाद भी मिलता है, और सहस्रनामों का पारायण भी साथ ही हो जाता है। संस्कृत काव्यजगत् को अनूठी भेंट। हिन्दीभाषानुवाद के साथ।

मूल्य—५.२५

अन्य ग्रन्थ

१. श्रीत्रिगुणेश्वर-शिवस्तोत्रम्	प्रकाशित
२. श्रीसूक्तिलहरी	,,
३. श्रीरामाश्वधाटीचातुष्ट्यम्	,,
४. श्रीअवधूताभिवादनम्	,,
५. श्रीवैद्यान्प्रति	,,

विशेष सूचना :

समस्त पुस्तकों को मंगाने का डाक-व्यय प्रकाशित मूल्य से अलग रहेगा। पुस्तकों के मूल्य में सुविधानुसार परिवर्तन-परिवर्धन किया जा सकता है।

सभी पुस्तकें मिलने का पता :
श्री पं. गोविन्द मिश्र
चौबुर्जा, भरतपुर (राजस्थान)

श्रीः

श्रीमदानन्दवन प्रसूनमाला के ३ पुष्प

१	श्रीसिद्धमहारहस्यम्-संस्कृत	१.००
२	श्रीमदमृतसूक्तिपञ्चाशिका-संस्कृत व्याख्या सहित	३.००
३	श्रीमन्दाक्रान्तास्तोत्रम्-हिन्दी अनुवाद सहित	३.००

श्रीमदमृतग्रन्थमाला के ८ पुष्प

१	श्रीमहाऽनुभवशक्तिस्तवः-संस्कृत तथा हिन्दी व्याख्या सहित	०.५०
२	श्रीपरशुरामस्तोत्रम्-राष्ट्रभाषापद्यगद्यानुवाद सहित सचित्र चतुर्थ संस्करण	अमूल्य
३	श्रीश्रीविंशतिकाशास्त्रम्-दो संस्कृत व्याख्याओं तथा एक हिन्दी व्याख्या सहित	४.७५
४	श्रीसप्तपदीहृदयम्-संस्कृत, हिन्दी, इंगलिश रूपान्तरों के साथ	१.००
५	श्रीसंजीवनीदर्शनम्-हिन्दी भाषान्तर सहित	१.००
६	श्रीसंक्रान्तिपञ्चदशी-राष्ट्रभाषा गद्यपद्यानुवाद सहित	१.००
७	श्रीसिद्धमहामन्त्रमयी परशिव प्रार्थना-हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद सहित	अमूल्य
८	श्रीमन्दाक्रान्तास्तोत्रम् (अभिनव संस्करण)	५.००

अन्य ग्रन्थ

१	श्रीराष्ट्रालोकः-राष्ट्रभाषानुवाद सहित तृतीय संस्करण	१.००
२	श्रीआत्मविलासः-श्रीसुन्दरीराष्ट्रभाषाभाष्य सहित (द्वितीय संस्करण प्रेस में)	
३	श्रीस्वाध्यायमहिमस्तोत्रम्-हिन्दीभाषान्तर के साथ (मुद्रणालय में)	